निवेदन

इस संग्रह में सब मिलाकर बारह लेख हैं। वे समय-समय पर लिखे गये थे। उनके लिखे जाने का समय प्रत्येक लेख के नीचे दे दिया गया है। पर लिखे जाने के समय के क्रम के अनुसार वे नहीं रक्खे गये। जिन लेखों का सम्बन्ध परस्पर मिलता-जुलता सा है वे सब पास-पास रक्खे गये हैं। लेख प्राय: सभी ऐतिहासिक हैं; निराधार कोई नहीं। सभी का सम्बन्ध थोड़ा-बहुत इतिहास से है। अतएव, इस दृष्टि से, इनमें से कोई भी लेख, बहुत समय बीत जाने पर भी, निरुपयोगी नहीं हो सकता। सम्भव है, नई खोज से किसी-किसी लेख की—उदाहरणार्थ चन्देल-राजवंश नामक लेख की—कोई बात भ्रमपूर्ण सिद्ध हो जाय। पर इससे लेखों की ऐतिहासिकता में विशेष अन्तर नहीं आ सकता। कहने की आवश्यकता नहीं, ये लेख "सरस्वती" में बहुत पहले प्रकाशित हो चुके हैं।

लेख चार भागों में विभक्त किये जा सकते हैं। पहले लेख में महारानी विक्टोरिया का वह घोषणापत्र है जिसे उन्होंने सिपाही-विद्रोह के बाद प्रकाशित करके भारतवासियों को अभय दान दिया था और लिखा था कि वे उनके साथ जाति-पाँति और काले-गोरे का विचार न करके सदा न्याय-

सङ्गत व्यवहार करेंगी। दूसरे लेख में अँगरेज़ों के उस मैग्ना-फार्टा अर्थात् अधिकारसूचक सनद का उल्लेख है जिसे वे लोग बड़े ही महत्त्व का समझते हैं।

आगे के पाँच लेखों को दूसरे भाग में समझना चाहिए। उनमें मुग़ल-बादशाहों के राजत्वकाल की बातों या घटनाओं का वर्णन है। शिवाजी और अँगरेज़ तथा फ़र्रुख़सियर और अँगरेज़ी एलची आदि लेखों से उस समय की राजनैतिक स्थिति की ज्ञानप्राप्ति होने के सिवा पाठकों का मनोरञ्जन भी हो सकता है। पुराने सती-संवाद से यह सिद्ध होता है कि उस समय इस प्रथा ने कितना भीषण रूप धारण कर रक्खा था और इसके कारण अबला-जाति पर कितना निष्ठुर और कितना निर्दय अत्याचार होता था।

लेख नम्बर ८ और ९ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय की बातें हैं। उनमें से एक में सिराजुद्दौला और उसके कर्म्मचारियों की नृशंसता का वर्णन है। दूसरे में कम्पनी के कुछ गोरे तथा काले अफ़सरों और कर्म्मचारियों के क्रूर कामों का उल्लेख है।

अन्तिम अर्थात् चौथे भाग के तीन लेखों में प्राचीन भारत की कुछ ऐतिहासिक बातों का विवेचन है। उनमें से लेख नम्बर १० में यह दिखाया गया है कि किसी समय इस देश में जहाज़ बनाने के बड़े-बड़े कारख़ाने थे। यहाँ लड़ाकू जहाज़ भी बनते थे और माल ले जानेवाले जहाज़ भी तैयार

होते थे। उनके अनेक बेड़े दूर देशों और टापुओं को जाया करते थे। यह स्थिति मुग़ल-बादशाहों के राजत्वकाल और उसके बाद तक भी थी। पर उसके अनन्तर, राजसत्ता के बल पर, उनका नाश कर दिया गया।

आशा है, इस संग्रह के प्रकाशन से पाठकों का, और कुछ न सही, घड़ी भर मनोरञ्जन तो अवश्य ही होगा।

दौलतपुर, रायबरेली
१७ फ़रवरी १९२७

महावीरप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची

पुरावृत्त

१—महारानी विक्टोरिया का घोषणापत्र

इलाहाबाद, सोमवार, १ नवम्बर, १८५८ ईसवी।

इँगलिस्तान की महारानी विक्टोरिया ने माननीय गवर्नर-जनरल बहादुर को आज्ञा दी है कि हिन्दुस्तान के राजे, महाराजे, सरदार और सर्व-साधारण के जानने के लिए, नीचे दिया हुआ घोषणापत्र, जो महारानी ने बड़ी कृपा करके लिखा है, प्रकाशित किया जाय।

हिन्दुस्तान के राजे, महाराजे, तअल्लुकेदार, सरदार और दूसरे लोगों के लिए कौंसिल के इजलास में विराजमान महारानी का घोषणापत्र—

ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के संयुक्त राज्य की, और इस राज्य के अधीन योरप, एशिया, आफ्रिका, अमेरिका और आस्ट्रेलेशिया में जितने छोटे-मोटे उपराज्य, उपनिवेश और बस्तियाँ हैं उन सबकी महारानी और धर्म की रक्षा करनेवाली विक्टोरिया हैं।

हिन्दुस्तान का राज-काज आज तक माननीय ईस्ट इंडिया कम्पनी, हमारी तरफ़ से, चलाती थी। पर, अब, कई एक विशेष महत्त्व के कारणों से, पारलियामेंट नाम की सभा में एकत्र हुए स्पिरिचुअल और टेंपरल लार्ड्स और कामन्स की सलाह और सम्मति से, वह कारोबार हमने ख़ुद ही करने का निश्चय किया है।

इस कारण हम इस घोषणापत्र के द्वारा सूचित और प्रकट करती हैं कि ऊपर लिखे अनुसार सलाह और सम्मति लेकर पूर्वोक्त राज्य का कारोबार हमने अपने हाथ में ले लिया है; और हम पूर्वोक्त देश के अपने सारे प्रजाजनों को आज्ञा देती हैं कि तुम हमारे, हमारे वारिसों और हमारे उत्तराधिकारियों के साथ, यथार्थ प्रजा का जैसा सम्बन्ध होना चाहिए उसके अनुसार, सचाई और ईमानदारी का बर्त्ताव करो; और अब आगे पूर्वोक्त देश का राजकाज हमारे नाम पर, हमारी तरफ़ से, करने के लिए जब-जब जिस-जिस अधिकारी को हम नियत करें उस-उसकी आज्ञा का पालन तुम करते रहो।

अपने बहुत बड़े विश्वास और प्रीतिपात्र मन्त्री, माननीय चार्ल्स जान वाइकौंट केनिंग् साहब, की ईमानदारी, योग्यता और चतुरता पर अपना पूरा विश्वास और भरोसा रखकर उनको, अर्थात् उल्लेख किये गये वाइकौंट केनिंग् साहब को, पूर्वोक्त देश में हम अपना पहला वाइसराय और गवर्नर-जनरल निश्चित और नियत करती हैं; और हमारे नाम पर पूर्वोक्त

देश का राज्य-सम्बन्धी कारोबार चलाने, और एक मुख्य स्टेट-सेक्रेटरी की मारफ़त जो-जो हुक्म और क़ायदे, समय-समय पर, हमारी तरफ़ से उनके पास पहुँचें उनके अनुसार हर एक विषय में, हमारे नाम पर, हमारी तरफ़ से, कारवाई करने का हम उन्हें अधिकार देती हैं।

इस समय जिन-जिन देशों और फ़ौजी कामों के विषय में जो-जो अधिकार माननीय ईस्ट इंडिया कम्पनी के नियत किये हुए हैं उन सबको हम उन-उन कामों के विषय में वैसे ही रहने देती हैं। आगे जैसी हमारी इच्छा होगी, और जो क़ायदे या क़ानून हम बनावेंगी, तदनुसार फेर-फार किया जायगा।

हिन्दुस्तान के जितने राजे और रजवाड़े हैं उन पर हम यह बात साफ़ तौर पर प्रकट करती हैं कि माननीय ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उनके साथ जो सन्धिपत्र और इक़रारनामे किये होंगे, या जो पूर्वोक्त कम्पनी के हुक्म से हुए होंगे, वे सब हमको मञ्जूर हैं। हम उनका पालन सावधानी से करेंगी। इसी तरह राजे-रजवाड़ों को भी अपनी-अपनी तरफ़ से उन सन्धिपत्रों और इक़रारनामों की शर्तों का पालन करना चाहिए।

इस समय हमारा जितना राज्य है उसे बढ़ाने की हमारी बिलकुल इच्छा नहीं। हमारे राज्य और राजाधिकार को धक्का पहुँचाने का यदि किसी ने यत्न किया तो हम उसे दण्ड दिये बिना रहने की नहीं। और, इसी तरह, दूसरों के देश और हक़ को धक्का पहुँचानेवाली बात भी हम कभी मञ्जूर

करने की नहीं। जिस तरह हम अपना अधिकार, अपना दर्जा, अपनी मान-मर्य्यादा का ख़याल रखती हैं उसी तरह हम हिन्दुस्तानी रियासतों के राजे-रजवाड़ों का अधिकार, दर्जा और मान-मर्य्यादा का ख़याल रक्खेंगी। हम चाहती हैं कि देशी रियासतों और हमारी प्रजा, दोनों, का उत्कर्ष और कल्याण हो; और ये बातें देश में स्वस्थता और उत्तम प्रकार की राज्य-व्यवस्था होने ही से हो सकती हैं।

हिन्दुस्तान के जिन भागों में हमारा राज्य है उनकी प्रजा के विषय में भी हम उन्हीं राजधर्म्मों का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझती हैं जिन राजधर्म्मों को हम अपनी और सब प्रजा के विषय में ज़रूरी समझकर मानती हैं। ईश्वर की कृपा से उन सब का पालन हम अन्तःकरणपूर्वक वास्तविक रीति से करेंगी।

क्रिश्चियन-धर्म्म की सत्यता पर हमें पूरा विश्वास है। और, इस बात का ख़याल करके कि धर्म्म के द्वारा (मनुष्य के मन को) शान्ति मिलती है हम परमेश्वर के उपकार को मानती हैं। तथापि धर्म्म-सम्बन्धी हमारे जो विचार हैं उन्हें हमारी प्रजा को भी मानना चाहिए—इस तरह की सख़्ती करने का हमें अधिकार नहीं और इस बात की हमें इच्छा भी नहीं। हमारी आज्ञा है कि धर्म्म-सम्बन्धी आचार-विचारों के कारण न तो किसी पर किसी तरह का आघात पहुँचे और न किसी को किसी तरह का दुःख मिले। हमारी यह भी आज्ञा है

कि क़ानून की दृष्टि में सब लोग बराबर समझे जायँ—क़ानून सबको एक सा आश्रय दे—किसी के साथ पक्षपात न किया जाय। अपने सब अधिकारियों को हमारी सख़्त ताकीद है कि हमारी रियाया की धार्म्मिक समझ, भक्ति या विश्वास में वे किसी तरह को दस्तंदाज़ी न करें; और यदि करेंगे तो वे हमारी बहुत बड़ी अप्रसन्नता के पात्र होंगे।

हमारी यह भी आज्ञा है कि हमारी रियाया में जो लोग अपनी विद्या, बुद्धि और प्रामाणिकता के कारण जो-जो सरकारी काम यथोचित रीति पर करने के लायक़ हों वे-वे काम, सुभीते का ख़याल रखकर, बिना किसी रोक-टोक के, निष्पक्षपातपूर्वक, जाति और धर्म्म की बात को मन में न लाकर उन्हें दिये जायँ।

पूर्वजों के समय से जो ज़मीन हिन्दुस्तान के निवासियों के क़ब्ज़े में चली आती है उस पर उनकी आसक्ति का होना हमें मालूम है और हमारे ध्यान में भी है। हमारी आज्ञा है कि सरकार को जो उचित कर या लगान मिलना चाहिए उसे लेकर ज़मीन के सम्बन्ध में रियाया के जो-जो हक़ हों वे क़ायम रहें और हर एक विषय में क़ायदे क़ानून बनाते और उनको अमल में लाते समय हिन्दुस्तान के प्राचीन हक़, रीति-रस्म और रूढ़ि पर उचित ध्यान रक्खा जाय।

राज्य-लोभी लोगों ने अपने देशवासियों से झूठी बातें कहकर उनको धोखा दिया और विद्रोह करने के लिए उन्हें प्रवृत्त

किया। उनकी इस करतूत से हिन्दुस्तान के निवासियों को दुःख और कष्ट उठाने पड़े। इससे हमें बहुत दुःख पहुँचा है। विद्रोहियों का पराजय करके विद्रोहनाश के द्वारा हमारा सामर्थ्य सब पर विदित हो गया है।

परन्तु हमारी इच्छा है कि ऊपर लिखे अनुसार धोखें में आकर फँसनेवाले लोगों में जो कोई फिर मुनासिब तौर पर (बिना किसी तरह का झगड़ा-फ़िसाद किये) अपने स्थान में रहने के अभिलाषी हों उन पर दया करके उनके अपराध माफ़ किये जायँ।

अधिक ख़ून-ख़राबा न हो और हिन्दुस्तान के अन्तर्गत हमारे अधीन देश में जल्द सुस्थिरता हो जाय, इसलिए एक प्रान्त मे हमारे वाइसराय और गवर्नर-जनरल ने, विगत दुःख-दायक विद्रोह में सरकार के विरुद्ध अपराध करनेवालों में बहुतों के अपराधों को, कुछ शर्तों पर, माफ़ कर देने की आशा दे भी दी है और जिनके अपराध माफ़ किये जाने के लायक नहीं उनके विषय में यह भी निश्चय कर दिया है कि उनको किस-किस तरह का दण्ड दिया जायगा। यह तजवीज़, जो हमारे वाइसराय और गवर्नर-जनरल ने की है, हमें मञ्जूर और क़बूल है। इसके सिवा हम और भी नीचे लिखे अनुसार बातें प्रकाशित करती हैं।

अँगरेज़ी-सरकार की रियाया का ख़ून करने में प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने का सबूत जिन लोगों के ख़िलाफ़ मिला होगा, या

मिलेगा, उन अपराधियों को माफ़ी देना न्यायानुकूल नहीं; परन्तु उनको छोड़कर और सब अपराधियों पर दया की जायगी।

ख़ूनी अपराधियों को जिन लोगों ने जान-बूझकर आश्रय दिया होगा, या जो लोग विद्रोह के अगुवा या प्रवर्तक रहे होंगे उनको प्राण-दण्ड देने के सिवा और कोई आश्वासन या भरोसा नहीं दिया जा सकता। परन्तु ऐसे आदमियों के लिए दण्ड देने का निश्चय करते समय इस बात का पूरा-पूरा विचार किया जायगा कि किस कारण उन्होंने सरकार के साथ बेईमानी का व्यवहार किया; और जिन लोगों के विषय में यह मालूम हो जायगा कि स्वार्थी आदमियों की उड़ाई हुई झूठी ख़बरों को, केवल अविचार के कारण, सच समझकर उन्होंने अपराध किये, उनके साथ बहुत कुछ दयालुता का बर्ताव किया जायगा।

इस घोषणापत्र के द्वारा हम इस बात का भी विश्वास दिलाती हैं कि पूर्वोक्त आदमियों को छोड़कर जो लोग विद्रोही बनकर लड़ रहे हैं वे यदि अपने-अपने घर को लौटकर स्थिरता से अपने-अपने काम-धन्धे करने लगेंगे तो अपने विरुद्ध, अपने राज्य के विरुद्ध और अपनी मान-मर्यादा के विरुद्ध किये गये उनके सब अपराधों को भुलाकर, किसी तरह की कोई शर्त न रखकर, उन्हें माफ़ी दी जायगी।

हमारी आज्ञा है कि अपराधों की माफ़ी और दया के विषय में जो नियम ऊपर दिये गये हैं उनके अनुसार, अगली

जनवरी की पहली तारीख़ के पहले, जो लोग बर्ताव करने लगें उन सबके विषय में माफ़ी और मेहरबानी से सम्बन्ध रखनेवाले पूर्वोक्त नियम काम में लाये जायँ।

अन्तःकरण से हमारी इच्छा है कि ईश्वर की कृपा से जब हिन्दुस्तान में स्वस्थता हो जाय तब देश के व्यापार-धन्धों को उत्तेजना दी जाय, लोकोपयोगी और लोक-कल्याणकारी कामों की वृद्धि की जाय, और उस देश की हमारी सारी प्रजा का हित-साधन करनेवाली रीति से राज्य का कारोबार चलाया जाय। अपनी प्रजा के कल्याण ही को हम अपना सामर्थ्य, उसके सन्तोष ही को हम अपने राज्य की मज़बूती, और *उसका कृतज्ञता ही को हम अपना उत्तम साफल्य समझती* हैं। हमारी प्रार्थना है कि अपनी प्रजा के कल्याण के सम्बन्ध में हमारी जो इच्छायें हैं उन्हें पूर्णता को पहुँचाने के लिए हमें और हमारे अधिकारियों को सर्वशक्तिमान् परमेश्वर सामर्थ्य दे।

[अप्रेल १९०६

२—अँगरेज़ी प्रजा का पराक्रम

राजा बड़ा प्रजा अल्प, राजा श्रेष्ठ प्रजा कनिष्ठ, राजा बाप प्रजा बालक—इस तरह की कल्पनायें प्राचीन समय से लेकर आज तक कितने ही देशों में प्रचलित हैं। जो कुछ राजा करे उसे प्रजा को चुपचाप मानना चाहिए। ज़रा भी चाँ-चपड़ करना मुनासिब नहीं। पुराने समय से प्रजा का यही धर्म्म माना गया है। परन्तु ज्ञान-मार्ग में मनुष्यों का तज-रिबा जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे ही वैसे उनकी समझ में यह बात आती गई कि राजा हुआ तो क्या हुआ; वह भी और आद-मियों की तरह एक आदमी है। यह स्वाभाविक बात है कि वह औरों के सुख की अपेक्षा अपने सुख का अधिक ख़याल रक्खे। अपने को अधिक आराम पहुँचाने—अपने को अधिक सुखी करने—की झोंक में राजा के हाथ से अन्याय हो सकता है, अनुचित और असन्तोषजनक काम हो सकता है और प्रजा को कष्ट पहुँच सकता है। यह ठीक नहीं। इसका निवारण होना चाहिए। यह कल्पना पहले पहल योरप के देशों में उत्पन्न हुई; फिर वह एशिया में पहुँची। जब वह धीरे-धीरे इँगलेंड पहुँची तब वहाँ के निवासी राजा की सत्ता को नियमित करने की फ़िक्र में लगे। बुद्धिमान् मनुष्यों ने प्रयत्न आरम्भ किये। वे प्रयत्न अनन्त हैं। उनके

फल भी अनन्त हैं। उनका साद्यन्त वर्णन बहुत ही मनोरञ्जक और उपदेशपूर्ण है। इस तरह के प्रयत्न करके प्रजा ने राजा से जो कुछ पाया है उसे हम पराक्रम कहते हैं। उसकी योग्यता लड़ाई के मैदान में दिखलाये गये पराक्रम से कम नहीं है। उसमें से दो-एक बातें हम यहाँ पर लिखते हैं।

अँगरेज़ी प्रजा के पहले पराक्रम का नाम है मैग्नाकार्टा। यह एक सनद है। इसे १२१५ ईसवी में इँगलेंडवालों ने जॉन नामक अपने राजा से प्राप्त किया था। जॉन बड़ा दुराचारी और अन्यायी था। वह प्रजा को बहुत तङ्ग करने लगा। अमीर, उमरा, सेठ-साहूकार—सबसे वह ज़बरदस्ती रुपया वसूल करने लगा। एक यहूदी महाजन बड़ा धनाढ्य था। उसने राजा के इच्छानुसार रुपया न दिया। इस कारण राजा ने उसे क़ैद कर लिया और प्रतिदिन उसका एक-एक दाँत उखड़वाने लगा! ६ दिन तक उसका एक-एक दाँत उखाड़ा गया। जब, वह इस तरह दी गई वेदना से बहुत ही व्याकुल हुआ तब, राजा जितना रुपया माँगता था उतना देकर, किसी तरह उसने अपनी जान बचाई। इस तरह के जो अनेक ज़ुल्म—अनेक भयङ्कर अन्याय—हो रहे थे वे प्रजा को असह्य हो गये। अन्त में प्रजा बिगड़ खड़ी हुई। उसने टेम्स नदी के किनारे, रनीमीड के मैदान में, राजा को पकड़ा और १५ जून को उससे मैग्नाकार्टा नाम की एक दस्तावेज़ लिखवा ली। यह एक प्रकार का इक़रारनामा है। उस

समय जो विशेष समझदार और चतुर लोग वहाँ थे उन्हीं का यह लिखा हुआ है। दस्तख़त उस पर राजा ने किये हैं। इस इक़रारनामे में राजा और प्रजा दोनों के हक़ों का यथोचित नियमन किया गया है। इसमें कुल ६३ दफ़ायें हैं। उनमें से ३ सबसे अधिक महत्त्व की हैं। उनका मतलब यह है—

(१) आदमी चाहे अमीर हो चाहे ग़रीब, सबके हक़ एक से समझे जायँ।

(२) क़ानून के अनुसार अपराध साबित हुए बिना किसी आदमी को क़ैद करने का अधिकार राजा को नहीं और न उसे निज के लिए किसी से रुपया-पैसा वसूल करने ही का अधिकार है।

(३) न्याय के कामों में घूस न ली जाया करे; सबका न्याय हुआ करे, कोई उससे वञ्चित न रक्खा जाय; और न्याय होने में देर न की जाया करे।

इन बातों में न तो कुछ अपूर्वता ही है और न नवीनता ही। तथापि इँगलैंड की प्रजा ने इस विषय का इक़रारनामा जॉन से लिखवा लिया और उसके अनुसार काम करने के लिए उसे लाचार किया। जितने अँगरेज़ हैं सब इस सनद को पूज्य समझते हैं। उन्हें इसका बड़ा अभिमान है। वे इसे बहुत बड़ी चीज़ समझते हैं। वे समझते हैं, मानो उन्होंने लोक-स्वतन्त्रता के एक बहुत ही मज़बूत क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया है। इसे वे बहुत होशियारी से रखते हैं। यह इक़-

रारनामा मिलने के दो सौ वर्ष बाद तक उन्होंने इसे ३७ दफ़े फिर से नया किया है!

दूसरे पराक्रम का नाम है हीबियस कार्पस। इस क़ायदे को अँगरेज़ लोग मैग्नाकार्टा से कुछ ही कम महत्त्व का समझते हैं। १६७९ ईसवी में, दूसरे चार्ल्स राजा के समय, अविश्रान्त परिश्रम और घोर वाद-विवाद करके, अँगरेज़ लोगों ने इसे पारलियामेंट से मञ्ज़ूर करा पाया। पहले यह रीति थी कि यदि कोई आदमी राजा का अपमान या अपराध करता था तो उसके अपराध का न्यायानुसार विचार न करके जब तक राजा चाहता था उसे क़ैद रखता था। इस रीति के प्रचलित रहने से अनेक निरपराधी आदमियों को बहुत मुसीबतें झेलनी पड़ती थीं। प्रजा ने इसे बन्द करने ही में अपना कल्याण समझा। सतत प्रयत्न करके अख़ीर में उसे कामयाबी हुई। पारलियामेंट ने यह क़ानून बना दिया कि अपराध करने के सन्देह में यदि पुलिस किसी आदमी को पकड़े तो इतने घण्टे के भीतर पुलिस को उसे विचार के लिए न्यायाधीश के सामने हाज़िर करना ही चाहिए। और जो आदमी एक दफ़े किसी मुक़द्दमे में निरपराधी साबित हो जाय उस पर फिर उसी आरोप के सम्बन्ध में कोई अभियोग न चलाया जाय।

तीसरा पराक्रम अँगरेज़ी प्रजा का बिल आफ़ राइट्स है। तीसरे विलियम राजा के समय में, १६८९ ईसवी में, तत्कालीन अनेक झगड़े-फ़िसाद और गड़बड़ों के मिटाने के लिए प्रजा ने

यह क़ायदा पारलियामेंट से मञ्ज़ूर कराया। इसकी मुख्य-मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं—

(१) राजा या पारलियामेंट में से किसी एक को अकेले यह शक्ति नहीं कि वह किसी क़ानून को रद कर सके, यों उसे कुछ समय तक मुलतवी रख सके।

(२) पारलियामेंट से सलाह किये बिना राजा को किसी तरह का कर लगाने का अधिकार नहीं। अगर कोई कर इस तरह लगाया जाय तो वह बेक़ायदा समझा जाय।

(३) शान्ति के समय, बिना पारलियामेंट की मंज़ूरी, अधिक फ़ौज रखना बेक़ायदे समझा जाय।

(४) प्रजा को अधिकार है कि वह राजा से न्याय की प्रार्थना कर सके।

(५) पारलियामेंट के सभासदों के चुनाव के काम में प्रतिबन्ध न हो; सब तरह की स्वतन्त्रता दी जाय।

(६) पारलियामेंट में बोलने और वाद-विवाद करने के सम्बन्ध में जो स्वतन्त्रता है उसके औचित्य या अनौचित्य का निर्णय पारलियामेंट ही में हो, बाहर नहीं।

(७) प्रजा के दुःखनिवारण का विचार करने और क़ायदे-क़ानून को अधिक मज़बूत बनाने के लिए पारलियामेंट की बैठक बार-बार हुआ करे।

अनेक राजकीय अँगरेज़ों की राय है कि यह पूर्वोक्त क़ानून पास हो जाने से अनेक प्रकार के सुभीते हो गये हैं, अनेक

प्रकार के झगड़े बन्द हो गये हैं और अनेक राजकीय काम पहले की अपेक्षा अब अधिक अच्छी तरह होने लगे हैं। एक ग्रन्थकार कहता है कि ये पराक्रम अँगरेज़ी-राज्यरूपी क़िले की मज़बूत दीवारें हैं। इनके होने से क़िले की रक्षा उत्तम प्रकार से होती है। इन तीनों पराक्रमों के विषय में राजकार्य्य-धुरन्धर लार्ड चाथम ने एक बार कहा था—"अँगरेज़ी-स्वातन्त्र्य का सारा धर्म्मशास्त्र इन्हीं में है।"

अपनी स्वातन्त्र्य-रक्षा के लिए यह क़िला अँगरेज़ों ने अपने देश, इँगलेंड, में बनाया। परन्तु आश्चर्य्य की बात यह है कि जहाँ-जहाँ वे जाते हैं वहाँ-वहाँ वह उनके साथ जाता है। उसे वे स्वयम्भू समझते हैं। वह उनसे कभी दूर नहीं रहता। अब कोई दो सौ वर्ष से अँगरेज़ लोग इस देश में भी आ गये हैं। और हमारा और उनका रिश्ता राजा-प्रजा का हो गया है। अतएव उनका यह स्वयम्भू क़िला इस देश में भी किसी हद तक आ पहुँचा है और हम हिन्दुस्तानियों को उसके भीतर रहने का मौक़ा मिला है। हमारी जान और हमारा माल सब उसके भीतर सुरक्षित है। इसमें कोई आश्चर्य्य या विलक्षणता की बात नहीं। पूर्वपुरुषों की उपार्जित सम्पत्ति का उपभोग छोटे-बड़े सभी भाइयों को बराबर प्राप्त होता है। यह बात सर्वथा धर्म्मशास्त्र के अनुकूल है। यह एक प्रकार का आलङ्कारिक वर्णन हुआ। इसे जाने दीजिए। यह बात साफ़-साफ़ इस तरह कही जा सकती है कि इँगलेंड की प्रजा ने

प्रचण्ड परिश्रम करके, जिन बातों को ध्यान में रखकर, अपने लिए क़ानून पास करा लिये हैं, उन्हीं बातों को ध्यान में रखकर, इस देश के राज्य के सम्बन्ध में भी, अँगरेज़ी गवर्नमेंट ने बहुत समझ-बूझकर क़ायदे-क़ानून बनाये हैं। रेल, तार, छापेख़ाने, फ़ोटोग्राफ़, फ़ोनोग्राफ़, टेलीफ़ोन, बाईसिकल, मोटरकार, पुतलीघर इत्यादि चीज़ें, यन्त्र श्रौर कल-कारख़ाने जैसे अँगरेज़ लोगों के परिश्रम से विलायत में प्रचलित होकर पीछे से हम लोगों को प्राप्त हुए हैं श्रौर उनसे हम लोग फ़ायदा उठा रहे हैं, उसी तरह यहाँ की अँगरेज़ी गवर्नमेंट के क़ायदे-क़ानून भी इँगलेंड के लोगों के परिश्रम श्रौर प्रयत्न से वहाँ सिद्ध होकर अब वे हमें भी अनायास प्राप्त हुए हैं। हम लोगों में से एक साधारण श्रादमी को भी, अब, सरकारी सिपाही को यह कहने का अधिकार प्राप्त है कि बिना समन के मैं कचहरी में नहीं हाज़िर हो सकता; श्रौर किसी को पकड़ने के बाद २४ घण्टे के भीतर ही न्यायाधीश के सामने, उस पर किये गये आरोप का विचार करने के लिए, हाज़िर करना तुम्हारा कर्तव्य है। यह अँगरेज़ी क़ायदे-क़ानून ही की महिमा का प्रभाव है। अँगरेज़ी राज्य के पहले ये बातें यहाँ कहाँ स्वप्न में भी न थीं। अँगरेज़ लोगों के परिश्रमों का जो फल हुआ है उसका अंश अब हमें सहज ही में मिल रहा है। यह हमारे लिए एक अलभ्य लाभ है। अथवा यह समझना चाहिए कि एक भाई की प्राप्त की हुई सम्पत्ति का

उपयोग दूसरे भाई को होना न्याय्य ही है। धर्म्मशास्त्र की आज्ञा ही ऐसी है। या यों कहिए कि दूसरी अर्वाचीन विद्याओं की तरह, राज्य-व्यवहार-विद्या में अँगरेज़ लोग हमें उत्तम गुरु मिले हैं। सद्गुरु की हमेशा यही इच्छा रहती है कि अपना शिष्य अपने ही समान प्रवीण और योग्य हो। अतएव इस सुयोग का हमें अच्छा उपयोग करना चाहिए।

('बालबोध' से सङ्कलित)

[मार्च १९०७

३—जहाँगीर के आत्मचरित का एक नमूना

देहली के बादशाहों में से किसी-किसी ने अपनी दिनचर्य्या भी लिखी है। बाबर, हुमायूँ और जहाँगीर की दिनचर्य्यायें बहुत प्रसिद्ध हैं। उनसे उनका और उस ज़माने का बहुत कुछ हाल मालूम होता है। इन दिनचर्य्याओं का अनुवाद अँगरेज़ी में हो गया है। इन्हें आत्म-चरित कहना चाहिए। इनमें से आज हम जहाँगीर के आत्म-चरित का कुछ अंश नीचे देते हैं।

"परम पिता परमेश्वर की कृपा से, ८ जमादिउस्सानी, १०१४ हिजरी, को आगरे में एक बजे मुझे, ३८ वर्ष की उम्र में, राज-सिंहासन प्राप्त हुआ। आगरे से थोड़ी दूर पर एक गाँव सिकरी है। वहाँ शेख़ सलीम नामक एक फ़क़ीर रहता था। उसी के आशीर्वाद से मेरा जन्म हुआ था। इसी लिए मेरे पिता ने मेरा नाम सुल्तान सलीम रक्खा। परन्तु मैंने अपने पिता को सुल्तान सलीम या मुहम्मद सलीम नाम से अपने को कभी पुकारते नहीं सुना। वे मुझे हमेशा "शेख़ो बाबा" कहकर पुकारते थे।

"जब मैं बादशाह हुआ तब मैंने अपना नाम बदल डाला। मैंने सोचा कि सुल्तान सलीम नाम रखने से रूम के सुल्तानों का और मेरा नाम प्रायः एक हो जायगा। इससे नाम में गड़बड़ होने का डर है। बादशाहों का काम मुल्क लेना और

उस पर राज्य करना है। इस कारण मैंने अपना नाम 'जहाँगीर' रक्खा। जिस समय मैं युवराज था, मैंने ज्योतिषियों के मुँह से सुन रक्खा था कि मेरे पिता के बाद नूरुद्दीन नाम का एक पुरुष बादशाह होगा। यह बात मुझे याद थी। इससे नूरुद्दीन शब्द को मैंने अपने नाम में जोड़ दिया। अतएव मेरा पूरा नाम हुआ 'नूरुद्दीन जहाँगीर'।

"तख़्त पर बैठते ही मैंने सोचा कि सम्भव है मेरे न्यायाधीश प्रजा का उचित न्याय न करें; उनके मुक़द्दमों की उचित जाँच न करें; या उनकी शिकायतों को न सुनें। इससे मैंने हुक्म दिया कि सोने की एक ज़ञ्जीर बाहर से क़िले के भीतर लाई जाय। यदि किसी को मेरे अधिकारियों के ख़िलाफ़ कुछ कहना हो, या यदि किसी पर कोई अन्याय हुआ हो, तो वह उस ज़ञ्जीर के एक छोर को खींचे। ज़ञ्जीर चार मन की हो और उससे कई घण्टे बँधे रहें। वे क़िले के भीतर रहें और ज़ञ्जीर का दूसरा छोर बाहर। उसी छोर को खींचकर लोग मुझसे मिलने की इच्छा ज़ाहिर करें।

"मैंने बारह नियम बनाये और हुक्म दिया कि उनका अक्षरशः प्रतिपालन मेरी सल्तनत में हो। वे नियम ये हैं—

(१) जिन लोगों के पास जागीरें हैं उन्होंने अपने फ़ायदे के लिए लोगों की आमदनी पर कर लगा दिया है। यह कर अब न लिया जाय। इस तरह के और भी जितने कर थे, सब मैंने माफ़ कर दिये।

(२) बहुत से रास्ते ऐसे हैं जिन पर चोरी और डाकेज़नी रोज़ हुआ करती है। कुछ रास्ते ऐसे हैं जिनसे बस्ती बहुत दूर है। मैंने हुक्म दिया कि ऐसे रास्तों के पास अच्छी अच्छी सरायें और मसजिदें बनाई जायँ; कुवें खुदवाये जायँ और जहाँ गाँव न हों वहाँ गाँव आबाद करके लोगों को खेत और बाग़ वग़ैरह के लिए ज़मीन दी जाय।

(३) मेरे राज्य में चाहे मुसलमान मरे चाहे काफ़िर, उसकी जायदाद उसके उत्तराधिकारी को मिले। इसमें कोई अफ़सर या अधिकारी दस्तंदाज़ी न करे। यदि मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी न हो तो योग्य आदमियों की एक कमिटी बना दी जाय। वह उस जायदाद की देख-भाल करे और मुसलमानी धर्म्मशास्त्र के अनुसार उसे काम में लावे—मसजिद और सराय बनवावे, टूटे-फूटे पुलों की मरम्मत करावे और तालाब और कुवें खुदवावे।

(४) मैंने १४ वर्ष की उम्र से अब तक, अर्थात् ३८ वर्ष की उम्र तक, शराब पिया है। तथापि शराब को, और नशे की जितनी और चोज़ें हैं उनको, तैयार करने और पीने की मैंने मनाही करवा दी। चढ़ती जवानी में मैं नशे का यहाँ तक ग़ुलाम था कि बीस-बीस प्याले शराब मैं रोज़ पीता था। कुछ दिन बाद मुझे होश हुआ। तब मैं अपनी इस आदत को छोड़ने की कोशिश करने लगा। सात वर्ष की कोशिश से बीस से पाँच-छः प्याले तक मैंने शराब पीना कम कर दिया।

मैंने धीरे-धीरे शराब पीने के समय में भी फेरफार किया। कभी दिन में, कभी रात में, कभी शाम को मैं पीने लगा। इस तरह करते-करते जब मेरी उम्र ३० वर्ष की हुई तब मैं सिर्फ़ रात को शराब पीने लगा। अब मैं सिर्फ़ इसलिए पीता हूँ जिसमें जो कुछ मैं खाऊँ हज़म हो जाय और भूख अच्छी तरह लगे।

(५) कोई आदमी किसी दूसरे के घर में ज़बरदस्ती न रहे और न उसे वह बेदख़ल कर सके।

(६) चाहे कोई जैसा अपराध करे, उसके नाक-कान न काटे जायँ, या और इसी तरह की अङ्ग-भङ्गवाली सज़ा उसे न दी जाय। मैंने ख़ुद भी ईश्वर को साची करके क़सम खाई है कि इस तरह की नाक-कान, हाथ इत्यादि काटने की सज़ा देकर मैं किसी अपराधी का शासन न करूँगा।

(७) ख़ालसा ज़मीन के अधिकारी और ज़मींदार वग़ैरह, प्रजा को उसकी ज़मीन से बेदख़ल करके, उसे अपने फ़ायदे के लिए, जोत बो न सकेंगे।

(८) हर एक परगने में जितने ज़मींदार या ख़ालसा ज़मीन की मालगुज़ारी वसूल करनेवाले हैं, वे अपने इलाक़े में किसी आदमी से विवाह या और कोई सम्बन्ध, बिना मेरे हुक्म, न कर सकेंगे।

(६) मैंने हुक्म दिया है कि जितने बड़े-बड़े शहर हैं उनमें शफ़ाख़ाने खोले जायँ और अच्छे-अच्छे वैद्य या हकीम

रखकर रोगियों के दवा-पानी का बन्दोबस्त किया जाय। इस काम में जो ख़र्च हो वह शाही मालगुज़ारी से दिया जाय।

(१०) हर हफ़्ते का पहला दिन विशेष दिन समझा जाय। अपने पिता की तरह मैंने भी हुक्म दिया है कि हर साल मेरे जन्म-दिन (१८ रबिउल-अव्वल) से कुछ दिन तक किसी तरह की हिंसा न की जाय, अर्थात् कोई जीव-जन्तु न मारे जायँ। बृहस्पति को मैं तख़्त पर बैठा हूँ और रविवार मेरे पिता का जन्म-दिन है। इस कारण हर हफ़्ते बृहस्पति और रविवार को बलिदान का मैंने निषेध कर दिया।

(११) मैंने हुक्म दिया कि मेरे पिता के समय के जितने अधिकारी, जागीरदार और मनसबदार हैं, सब अपनी-अपनी जगह पर बने रहेंगे। उनका काम देखकर कुछ दिन बाद मैंने उनकी तरक़्क़ी कर दी। अहदी लोगों की तनख़्वाह मैंने १० से १५ रुपये कर दी और घर के नौकर-चाकरों की १० से १२। पिता के महल में जो स्त्रियाँ हैं उनके नौकर-चाकरों की तनख़्वाह भी मैंने बढ़ा दी। पिता के समय में सैयद मीरन नामक एक उच्चवंशीय मनुष्य एक धर्म-सम्बन्धी पद पर नियत था। मैंने उसे हुक्म दिया कि जो लोग दीन-दुखिया और दया के पात्र हैं उनको हर रोज़ मेरे पास लाया करे।

(१२) जो लोग बहुत दिन से क़िले और जेल में क़ैद थे उनको मैंने छोड़ दिया है।

"तख़्त पर बैठने के बाद, एक अच्छे दिन, सोने, चाँदी और ताँबे के सिक्के जारी किये जाने का मैंने हुक्म दिया। हर धातु के हर सिक्के का नाम मैंने जुदा-जुदा रक्खा। हर सिक्के के एक तरफ़ अपने नाम से, और दूसरे तरफ़ ढाले जाने की तारीख़ से, सम्बन्ध रखनेवाला एक-एक पद्य मैंने मुद्रित कराया। तख़्त पर मेरे बैठने की तारीख़ को कई आदमियों ने पद्य में वर्णन करने की चेष्टा की। सबके पद्य मैंने देखे। उनमें से अपने पुस्तकालय और चित्रशाला के अध्यक्ष मकतूब-ख़ाँ का बनाया हुआ पद्य मुझे अधिक पसन्द आया।"

[अक्टोबर १९०५

४—मुग़ल-बादशाहों की दिनचर्य्या

बहुत लोगों का ख़याल है कि मुग़ल-बादशाह दिन-रात भोग-विलास में मग्न रहते थे; राज-काज की ओर बिलकुल ध्यान न देते थे। पर अध्यापक यदुनाथ सरकार ने एक लेख लिखकर यह सिद्ध कर दिया है कि यह विचार भ्रमात्मक है।

आप लिखते हैं कि अकबर से लेकर औरङ्ग़ज़ेब तक, कोई डेढ़ सौ वर्ष में, चार बड़े-बड़े मुग़ल-बादशाहों ने राज्य किया। उनके ज़माने में देश में शान्ति रही, राज्य का विस्तार बढ़ा और शासन-प्रणाली तथा नाना प्रकार के कला-कौशलों की अच्छी उन्नति हुई। क्या ये सब काम भोग-विलास-रत बादशाहों के द्वारा हो सकते हैं? नहीं, कभी नहीं।

सौभाग्य की बात है कि फ़ारसी के सामयिक इतिहासों में बादशाहों की दिनचर्य्या का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। उनसे अच्छी तरह मालूम होता है कि वे लोग अपना समय किस तरह बिताते थे। उदाहरण के लिए शाहजहाँ की दिनचर्य्या इस प्रकार थी—

४ बजे सवेरे ... सोकर उठना, नमाज़ और क़ुरान शरीफ़ पढ़ना।

६–४५ ,, सवेरे ... झरोखे में बैठना, हाथियों की लड़ाई देखना, रिसाले का मुआइना करना।

७-४० बजे सवेरे ... दीवाने-आम में दरबार।
९-४० ,, ,, ... दीवाने खास में दरबार।
११-३० ,, ,, ... शाहबुर्ज में गुप्त परामर्श।
१२ ,, दोपहर ... हरम में भोजन, शयन और दीन-दुखिया स्त्रियों को दान।
४ ,, शाम ... दीवाने-आम में बैठना, शाम की नमाज़।
६-३० ,, ,, ... दीवाने खास में शाम की बैठक।
८ ,, रात ... शाहबुर्ज में गुप्त परामर्श।
८-३० ,, ,, ... हरम में गाना-बजाना।
१० ,, ,, ... किताबें सुनना।
१०-३० ,, ,, ... से ४ बजे सवेरे तक सोना।

प्रातःकाल की नमाज़

शाहजहाँ सूर्योदय से कोई दो घण्टे पहले उठते थे। अपने प्रातःकालीन कृत्य के बाद इस समय को वे धार्मिक कृत्यों में बिताते थे। पहले 'हदीस' के अनुसार नमाज़ पढ़ते। फिर मक्का की तरफ़ मुँह करके बैठ जाते और क़ुरान की आयतों का पाठ करते। अनन्तर ईश्वर का ध्यान करते थे। सूर्योदय के कुछ ही पहले वे महल की मसजिद में पहली नमाज़ पढ़ते थे। इसके बाद सांसारिक कार्यों की तरफ़ ध्यान देते थे।

झरोखे में बैठना

सबसे पहले वे अपनी प्रजा को अपने दर्शन देते थे। आगरे के क़िले की पूर्वी दीवार में, यमुना की तरफ़, झरोखये-दर्शन नाम की एक खिड़की थी। इसके नीचे बड़ा भारी मैदान था। यहाँ पर बादशाह के दर्शन करने के लिए प्रति-दिन सवेरे सैकड़ों आदमी जमा होते थे। सूर्य्योदय के कोई पौन घण्टे बाद शाहजहाँ खिड़की में आते थे। उन्हें देखते ही सब लोग उनको झुककर सलाम करते थे; वे भी हाथ उठाकर सलाम का उत्तर देते थे। यहाँ वे कोई पौन घण्टा रहते थे। यह समय केवल दर्शन देने ही में न बिताया जाता था, किन्तु थोड़ा बहुत काम और मनबहलाव भी हो जाता था। यहाँ पर बहुत से दुखी, दरिद्र और अत्याचार-पीड़ित लोग आते और अपने-अपने दुख और अत्याचार की कहानी सुनाकर बादशाह से न्याय और दया की प्रार्थना करते थे। इस प्रकार उनको अपनी प्रजा के विचार और भावों के जानने का नित्य अवसर मिलता था। अक्सर खिड़की से डोरियाँ लटका दी जाती थीं; लोग अपने-अपने प्रार्थना-पत्र उनमें बाँध देते थे और वे फिर ऊपर खींच ली जाती थीं। सुनते हैं कि यह सुनीति-सम्मत रीति अकबर ने चलाई थी। उस समय कुछ ब्राह्मण ऐसे थे जो बादशाह के दर्शन किये बिना न तो खाते-पीते थे और न कोई काम ही करते थे। ये लोग 'दर्शनी' ब्राह्मण कहलाते थे।

इसके बाद मैदान साफ़ कर दिया जाता था और हाथियों की लड़ाई शुरू होती थी। हाथियों की लड़ाई कराने की और लोगों को सख़्त मनाही थी; यह अधिकार बादशाह ने केवल अपने ही हाथ में रक्खा था। इस खेल का उन्हें बड़ा शौक़ था। कभी-कभी वे पाँच-पाँच जोड़े लगातार लड़वाते थे। यह विस्तृत मैदान भी इस काम के लिए बहुत उपयुक्त था। नहीं तो हज़ारों आदमी कुचलकर मर जाते। इसके बाद शाहजहाँ शाही और अमीरों के रिसाले की क़वायद देखते थे।

दीवाने आम

तब दीवाने आम में दरबार होता था। शाहजहाँ के पिता और पितामह भी इसी स्थान पर दरबार करते थे। पर उनके समय में दीवाने आम की वर्तमान भव्य और मनोहर इमारत न बनी थी। इसे शाहजहाँ ही ने, १६३८ ईसवी में, बनवाया था। यह सुर्ख़ पत्थर से बना और चालीस खम्भों से सधा हुआ है। तीन तरफ़ खुला है और चौथी तरफ़, पीछे, सङ्गमर्मर का एक बेल-बूटे-दार चबूतरा है। इसी पर बादशाह सलामत बैठते थे।

दरबार

फ़ारसी के इतिहासों से पता लगता है कि उस समय किस तरह बड़े-बड़े दरबार लगते थे। बादशाह मसनद पर बैठते थे। दाहने-बायें राजकुमार रहते थे और जब बैठने

की आज्ञा पाते सभी बैठ सकते थे। नीचे कमरे में दरबारी, मुसाहब, राजकर्म्मचारी, अमीर-उमरा और बड़े-बड़े आदमी, आमने-सामने, दोनों बग़ल में, खड़े रहते थे। शाहजहाँ के शरीर-रक्षक अपनी पीठ दीवार की तरफ़ करके चबूतरे से मिले हुए खम्भों के पास, दाहने-बायें, खड़े रहते थे। बादशाह के ठीक सामने राज्य के मुख्य-मुख्य कर्म्मचारी, दर्जे के अनुसार, क़तार बाँधकर, खड़े होते थे। शाही झण्डेबरदार बादशाह की बाईं ओर रहते थे।

इस तरह २०१ फ़ुट लम्बा और ६७ फ़ुट चौड़ा विस्तृत कमरा आदमियों से ठसाठस भर जाता था। परन्तु तब भी बहुत आदमी बाहर ही रह जाते थे। कमरे के तीन तरफ़ चाँदी की छड़ें लगी हुई थीं। अन्दर जाने के लिए सिर्फ़ तीन ही रास्ते थे। सदर दरवाज़े के आगे बेल-बूटेदार लकड़ी की एक मेहराब थी जो सुनहली झालरदार मख़मल से मढ़ी हुई थी। यहाँ पर सब प्रकार की सेना, क़रीने से, खड़ी रहती थी। हर एक ड्योढ़ी पर सुहावने वस्त्रों से अलंकृत दरबान और पहरेदार खड़े रहते थे, जो बाहरी आदमियों को अन्दर जाने से रोकते थे।

कोई पौने आठ बजे बादशाह पिछले दरवाज़े से चबूतरे पर आते थे। उनके गद्दी पर बैठते ही काम प्रारम्भ हो जाता था।

पहले बख़्शीजी मंसबदारों या सैनिक अफ़सरों के प्रार्थना-पत्र बादशाह के सामने पेश करते थे और उनके आज्ञानुसार

किसी को तरक़्क़ी देते और किसी को नये पद पर नियुक्त करते थे। फिर अन्य प्रान्तों से आये हुए अफ़सर उनके सामने आते और ज़रूरी बात-चीत के बाद लौट जाते थे। इसके बाद नवीन पद-प्राप्त लोग, अपने-अपने महकमे के अफ़सरों द्वारा, पेश किये जाते थे। ये लोग बड़े अदब से सलाम करते और शाही बख़-शिश, ख़िलअत या इनाम लेकर वहाँ से चल देते थे। तत्पश्चात् ख़ज़ाने और मालविभाग के अफ़सर अपनी-अपनी तजवीज़ें पेश करते और चटपट आज्ञा लेकर अपनी जगह पर चले जाते।

तब बादशाह के विश्वासपात्र मुसाहिब लोग राजकुमारों, सूबेदारों, फ़ौजदारों, दीवानों, बख़्शियों और अन्य प्रान्तिक अफ़सरों की अर्ज़ियाँ तथा उनके भेजे हुए पेशकश (नज़रें) पेश करते थे। राजकुमारों और बड़े-बड़े अफ़सरों के पत्र तो बादशाह ख़ुद ही पढ़ते या सुनते थे; और पत्रों का सिर्फ़ सारांश सुन लेते थे। इस काम के समाप्त होने पर सदर-आला प्रान्तिक सदरों के पत्रों की मुख्य-मुख्य बातें सुनाते थे। दरिद्र विद्वानों, शेख़ों, सैयदों और फ़क़ीरों की दीन दशा भी वे बादशाह को सुनाते थे और आवश्यकता के अनुसार उनकी सहायता करने की आज्ञा लेते थे।

दान-पुण्य का काम पूरा हो जाने पर बादशाह के स्वीकृत प्रस्ताव फिर दोबारा मञ्ज़ूरी के लिए पेश किये जाते थे। यह काम एक ख़ास अफ़सर के सिपुर्द था। इसे दारोग़ा अर्ज़ मुकर्रर कहते थे।

तब शाही अस्तबल के अफ़सर अपने-अपने घोड़ों और हाथियों को, उनके नियत खाने के साथ, बादशाह को दिखलाते थे। जो घोड़े या हाथी दुबले या निर्बल जान पड़ते थे उनके अफ़सरों को यथोचित दण्ड दिया जाता था। इसी तरह अमीर-उमराओं के घोड़ों का भी मुआइना होता था। इस प्रकार दरबार दो घण्टे या आवश्यकता के अनुसार न्यूनाधिक समय तक लगा रहता था। इसके बाद बर्ख़ास्त होता था।

दीवाने ख़ास

दस बजने के कुछ ही पहले बादशाह दीवाने ख़ास में जाकर सिंहासन पर विराजमान हो जाते थे। यहाँ वे बहुत महत्त्व-पूर्ण पत्रों के उत्तर स्वयं अपने हाथ से लिखते थे। शेष सब पत्रों को वे सुन लेते थे और उनके उत्तर में फ़रमान जारी करते थे। इन फ़रमानों का मसौदा वज़ीर बनाते थे। शाहजहाँ अपनी रुचि के अनुसार इनमें संशोधन करके साफ़ करवाते और तब शाही मुहर लगाने के लिए अन्तःपुर में मुमताज़ महल बेगम के पास भेज देते थे।

फिर माल-विभाग के सबसे बड़े अफ़सर भूमि या माल-गुज़ारी सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मामलों को बादशाह के सामने पेश करते और प्रत्येक बात के लिए अलग-अलग आज्ञा प्राप्त करते। इसके बाद दान-विभाग के अधिकारी दरिद्र और अनाथों के प्रार्थनापत्र पेश करते थे। तब बादशाह किसी को भूमि, किसी को नक़द रुपये और किसी को दैनिक वृत्तियाँ

देने की आज्ञा देते थे। दान-पुण्य के लिए एक विशेष फ़ण्ड था। इस फ़ण्ड की आमदनी दो तरह से होती थी। एक तो बादशाह के वार्षिक तुला-दान से, दूसरे राजकुमार और अमीर-उमरा बादशाह पर जो निछावर करते थे उस रुपये से।

उसके बाद कुछ समय प्रवीण शिल्पकारों की कारीगरी देखने में जाता था। फिर शाही इमारतों के नक़्शे पेश किये जाते थे। बादशाह अपने इच्छानुसार उनमें अदल-बदल करते थे। स्वीकृत होने पर वे मीर इमारत के पास भेज दिये जाते थे। साथ ही प्रधान मन्त्री, आसफ़ख़ाँ, यह भी लिख देते थे कि बादशाह उनमें क्या-क्या फेरफार करना चाहते हैं। शाहजहाँ को इमारतों से बड़ा शौक़ था। उनका ख़याल था कि इनसे उनकी यादगार क़यामत तक बनी रहेगी। इसी से वे इस काम को बड़ा महत्त्वपूर्ण समझते थे। कभी-कभी इमारतों के निरीक्षक बड़े-बड़े अनुभवी नरेशों के साथ दीवाने ख़ास में आते और अपने प्रभु से सलाह लेते थे।

जब ये काम समाप्त हो जाते थे तब बादशाह सिखाये हुए शिकारी जानवर—जैसे बाज़, चीते इत्यादि—देखते थे। फिर वे कोतल घोड़ों की चाल देखकर अपना चित्त प्रसन्न करते थे। ये घोड़े दीवाने ख़ास के आँगन में चतुर घुड़सवारों द्वारा दौड़ाये जाते थे।

शाहबुर्ज

कोई साढ़े ग्यारह बजे दीवाने ख़ास से उठकर बादशाह शाहबुर्ज जाते थे। यहाँ पर गुप्त मन्त्रणा होती थी। राज-

कुमारों और थोड़े से विश्वासपात्र अफ़सरों के सिवा इसके भीतर और कोई न जाने पाता था। नौकर भी बाहर खड़े रहते थे और बिना बुलाये अन्दर न जा सकते थे।

राज्य के उन गुप्त मामलों पर, जिनका सर्वसाधारण पर प्रकट करना हानिकारक समझा जाता था, बादशाह प्रधान मन्त्री के साथ यहाँ विचार करते थे। इस गुप्त परामर्श का सारांश लिख लिया जाता था। उसी के अनुसार कारवाई की जाती थी। भूमि और सेना के वेतन आदि के सम्बन्ध के वे मामले, जो पहले दो दरबारों में नहीं पेश किये गये, इस समय पेश किये जाते थे और उन पर बादशाह की आज्ञा ली जाती थी। कोई पौन घण्टे बादशाह यहाँ ठहरते थे।

हरम

ठीक दोपहर को शाहजहाँ अन्तःपुर में पधारते थे। वहाँ वे ज़ुहर की नमाज़ पढ़कर भोजन करते और एक घण्टा सोते थे। दुनिया के प्रायः सभी बादशाह अन्तःपुर में आराम करते और मन बहलाते हैं। पर शाहजहाँ यहाँ भी थोड़ा-बहुत काम करते थे। झुण्ड के झुण्ड दरिद्र विधवायें, अनाथ बच्चे और दरिद्र विद्वान्, धार्मिक तथा साधु लोगों की लड़कियाँ शाही ख़ैरात पाने के लिए प्रार्थना करती थीं। उनके प्रार्थना-पत्रों को मुख्य परिचारिका सत्तियुन्निसा पहले बेगम के हुज़ूर में पेश करती थी। बेगम साहिबा उनकी ख़बर बादशाह को देती थीं। तब वे किसी को ज़मीन, किसी को मासिक पेंशन

और कुँवारी कन्याओं को कपड़े, जवाहिरात तथा रुपये उनके विवाह के दहेज़ के लिए देते थे। इस तरह अन्तःपुर में नित्य सैकड़ों रुपये का दान-पुण्य होता था।

तीसरे पहर का दरबार

शाहजहाँ तीन बजे के बाद असर की नमाज़ पढ़ते थे और कभी-कभी दीवाने आम में जाकर बैठते थे। उपस्थित सभासद उठकर तुरन्त सलाम करते थे। थोड़ा-बहुत राज-काज होने के बाद महल के रक्षक लोग बादशाह सलामत के सामने आते और क़रीने से सलामी उतारते थे। तब बादशाह अपने मुसाहिबों के साथ दीवाने ख़ास में जाकर सूर्य्यास्त की नमाज़ पढ़ते थे।

दीवाने ख़ास में शाम की बैठक

इस समय दीवानख़ाना तरह-तरह के झाड़-फ़ानूसों के प्रकाश से जगमगा उठता था। यहाँ बादशाह अपने मुसाहिबों के साथ कोई दो घण्टे रहते थे। पहले राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी काम होता था; फिर मनबहलाव की ठहरती थी। गाना-बजाना शुरू हो जाता था। स्वयं बादशाह भी कभी-कभी गाते-बजाते थे। फ़ारसी के इतिहास-लेखकों का कथन है कि शाहजहाँ बड़े ही प्रवीण गायक थे। उनका मधुर और मनोहर गान जादू का असर रखता था। संसार-त्यागी और पवित्र स्वभाव के बड़े-बड़े योगी और सूफ़ी तक उसे सुनकर अपने को भूल जाते थे।

फिर गुप्त-मन्त्रणा

आठ बजे इशा की नमाज़ पढ़कर वे फिर शाहबुर्ज जाते थे, और यदि कोई गुप्त परामर्श करना बाक़ी होता था तो प्रधान मन्त्री और बख़्शियों को बुलाकर उसे तुरन्त कर डालते थे। दूसरे दिन के लिए कोई काम बाक़ी न रखते थे।

अन्तःपुर में गाना-बजाना

साढ़े आठ बजे वे अन्तःपुर लौट जाते थे और कोई दो-तीन घण्टे स्त्रियों का गाना सुनते थे। तब वे बिस्तर पर जाते और पड़े-पड़े किताबें सुनते थे। परदे की दूसरी तरफ़ पढ़नेवाले बैठकर यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकें, पैग़म्बरों या साधु-सन्तों के चरित, अथवा पुराने बादशाहों के इतिहास ज़ोर-ज़ोर से पढ़ते थे। इनमें से तैमूर का जीवन-चरित और बाबर का आत्मचरित शाहजहाँ को बहुत पसन्द था। दस बजे के क़रीब वे सो जाते और छः घण्टे तक बराबर सोते रहते।

बुध की अदालत

इस तरह मुग़ल बादशाह अपना जीवन प्रतिदिन बिताते थे। पर शुक्रवार को छुट्टी रहती थी। उस दिन दरबार न लगता था। बुध को भी अदालती काम के सिवा और कुछ न होता था। उस दिन बादशाह दीवाने-आम न जाकर दर्शनी खिड़की से सीधे दीवाने ख़ास चले जाते थे और ठीक आठ बजे न्याय के सिंहासन पर विराजमान हो जाते थे। यद्यपि शाहजहाँ ने बड़े-बड़े विद्वान्, अनुभवशील और ईश्वर-भक्त

क़ाज़ी और आदिल स्थान-स्थान पर नियत कर दिये थे तथापि सबसे ऊँची अपील बादशाह ही के यहाँ होती थी। उस दिन क़ानूनी अफ़सर, फ़तवा देने के योग्य पण्ड, धर्मात्मा और सत्यवादी विद्वान्, तथा मुसाहिबों के सिवा दीवानख़ाने में कोई न जाने पाता था। एक-एक वादी बारी-बारी से सामने आता था और अपने दुख की कहानी सुनाकर एक किनारे हो जाता था। बादशाह तहक़ीक़ात के बाद उलमाओं की सम्मति से फ़ैसला करते थे।

बस इसी तरह मुग़ल बादशाह अपना जीवन व्यतीत करते थे। कभी-कभी वे शाम को शहर में घूमने या यमुनाजी की सैर करने भी जाते थे। इसके सिवा, समय-समय पर, वे शिकार खेलने या दौरा करने भी जाते थे। जिस सूबे में बादशाह सलामत का दौरा होता था उसमें कुछ न कुछ उन्नति ज़रूर हो जाती थी। इससे मालूम होता है कि उस समय के बादशाह केवल भोग-विलास ही में मस्त न रहते थे; किन्तु वे अपने कर्तव्यों को समझते थे और उनका पालन भी करते थे। वास्तव में शाहजहाँ बड़े ही कर्तव्य-निष्ठ और परिश्रमी थे। यही कारण था जिससे उनके समय में प्रजा शान्त और सन्तुष्ट रही और देश की नाना प्रकार से उन्नति हुई।

[दिसम्बर १९०८

५—शिवाजी और अँगरेज़

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फ़ायर नामक एक डाक्टर ईस्ट इंडिया कम्पनी के सरजन थे। बहुत दिनों तक उन्होंने फ़ारिस और इस देश में सैर की। १६७४ ईसवी में वे इस देश में घूमने आये थे। उन्होंने अपने भ्रमण का वृत्तान्त पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। उसका नाम है—Fryer's Travels in India and Persia, between 1672 and 1681. यह पुस्तक लन्दन में, १६९८ ईसवी में, छपकर प्रकाशित हुई। इसमें डाक्टर फ़ायर ने इस देश का तत्कालीन बहुत कुछ हाल लिखा है। प्रसङ्गवश शिवाजी का भी कुछ वृत्तान्त उन्होंने दिया है। उसे हम यहाँ लिखते हैं।

इस देश में, सबसे पहले, सूरत में अँगरेज़ों ने अपनी कोठी खोली और व्यापार आरम्भ किया। सूरत में, उस समय, बड़ा व्यापार होता था। मक्का जाने के लिए वही प्रधान बन्दरगाह भी था। बड़े-बड़े महाजन वहाँ रहते थे। डचों और पोर्चुगीज़ों की भी कोठियाँ वहाँ थीं। अँगरेज़ों का जितना कारोबार वहाँ था, और उससे सम्बन्ध रखनेवाले जितने व्यापारी, दलाल और बही-खाता लिखनेवाले वहाँ थे, उन सब पर प्रेसिडेंट की हुकूमत थी। वही वहाँ का प्रधान अधिकारी था। सूरत की अपार सम्पत्ति का हाल सुनकर

शिवाजी ने उसे लूटना चाहा। भेष बदलकर, चार दिन तक, वह शहर में घूमा और मुख्य-मुख्य कोठियों और प्रधान-प्रधान महाजनों के मकानों का पता लगाकर, ४,००० सवार लेकर, उस पर उसने धावा किया। ६ दिन तक उसने सूरत को लूटा और जहाँ-तहाँ आग लगाकर शहर का विध्वंस कर दिया। यह घटना १६६४ ईसवी में हुई। उस समय कम्पनी की कोठियों के प्रेसिडेंट सर जार्ज आक्स्यनडाइन थे। केवल इन्हीं ने शिवाजी का मुकाबला किया; और किसी देशी अथवा विदेशी ने नहीं किया। उन्होंने अपनी कोठियों की रक्षा बड़े साहस से की और उनके आदमियों ने भी बड़ी वीरता दिखाई। अतएव अँगरेज़ी कोठियाँ लुटने से बच गईं। उनके आसपास और लोगों की भी जो दूकानें और मकान थे वे भी बच गये। हाँ, अँगरेज़ों का एक बाग़, जो बहुत ही ख़ूबसूरत था, अवश्य नष्ट हो गया। शिवाजी की फ़ौज ने उसको उजाड़ दिया। शिवाजी सूरत से अपरिमित धन लूट ले गया। जब इसकी ख़बर देहली पहुँची, और सर जार्ज आक्स्यनडाइन की वीरता का वृत्तान्त औरङ्गज़ेब ने सुना, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सर जार्ज के लिए ख़िलत भेजी; और कम्पनी के माल पर ढाई रुपया सैकड़ा महसूल भी कम कर दिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टर्स भी सर जार्ज की वीरता पर प्रसन्न हुए और उनको सोने का एक तमग़ा भेजा। उस पर लैटिन में यह वाक्य

खुदा हुआ था—Non minor est virtus quam quaerere parta tueri.

अर्थात् सच्ची वीरता वही है जो अपने आश्रितों की रक्षा में काम आवे।

सर जार्ज के अनन्तर जेरल्ड आङ्गियर सूरत में अँगरेज़ी व्यापारियों के प्रेसिडेंट हुए। उनके समय में शिवाजी ने दुबारा सूरत पर धावा किया। इस बार भी ख़ूब लूट-मार हुई और शहर में आग लगा दी गई। शहर के मुसलमान गवर्नर से, इस बार भी, कुछ करते-धरते न बना। परन्तु अँगरेज़ों ने अब के भी अपने माल-असबाब को लुट जाने से बचा लिया। इस प्रकार शिवाजी से अँगरेज़ों की, सूरत ही में, पहली जान-पहचान हुई।

१६६१ ईसवी में पोर्चुगल के राजा की बहन, डोना इनफँटा कैथरीना, का विवाह इँगलेंड के राजा दूसरे चार्ल्स से हुआ। तब बम्बई पोर्चुगलवालों के अधीन था। उन्होंने उसे, इस अवसर पर, विवाह के उपलक्ष्य में, अँगरेज़ों को दे दिया। तब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने वहाँ भी अपना कारोबार खोला। उस समय सूरत अँगरेज़ों का प्रधान अड्डा था। इसलिए बम्बई का कारोबार सूरत के अधिकारियों की देखभाल में रक्खा गया। तब बम्बई एक छोटा सा क़सबा था। वहाँ की आबो-हवा बहुत ही ख़राब थी। डाक्टर फ़ायर कहते हैं कि ५०० में १०० आदमी मुशकिल से वहाँ जीते थे।

बम्बई में भी एक प्रेसिडेंट रहता था। उसकी मातहती में एक छोटा सा कौंसिल भी था। कौंसिल ही की सलाह से सब काम होते थे।

सूरत को लूटकर शिवाजी दक्षिण को लौट गया। वहाँ उसके पिता शाहजी का शरीरपात हुआ। इसलिए, शिवाजी ने, यथानियम सिंहासन पर बैठकर, राजा होने का निश्चय किया। इस समय, अर्थात् १६६४ ईसवी में, डाक्टर फ्रायर यहीं थे। उन्होंने शिवाजी और अँगरेज़ों के सम्बन्ध में कई बातें ऐसी लिखी हैं जो ग्राण्ट डफ़ के द्वारा लिखित मराठों के इतिहास में भी नहीं हैं। अतएव, उनको हम, यहाँ पर, लिखना उचित समझते हैं—

इस समय शिवाजी का प्रताप बढ़ रहा था। इसलिए बम्बई के अँगरेज़ी प्रेसिडेंट ने, दक्षिण में व्यापार करने की अनुमति प्राप्त करने के इरादे से, एक एलची को शिवाजी के पास भेजा। शिवाजी तब रायरी के प्रसिद्ध क़िले में था। परन्तु जिस समय अँगरेज़ी दूत बम्बई से रवाना हुआ उस समय वह तीर्थ-यात्रा करने गया था। इसलिए उसे पुनचरा स्थान में ठहर जाना पड़ा। वहाँ उस दूत ने नारायण पण्डित नामक शिवाजी के एक प्रधान अधिकारी से भेंट की। नारायण पण्डित से उसने बहुत कुछ विनय-प्रार्थना की और कहा कि यदि वह शिवाजी से कह-सुनकर व्यापार करने की अनुमति दिला दे तो उससे दोनों पक्षवालों को लाभ हो।

पण्डित ने कहा—"अनुमति अवश्य मिल जायगी। जहाँ से व्यापार की चीज़ें अधिक आती हैं वे स्थान बीजापुर के राज्य में हैं; और बीजापुरवाले हमारे राजा से लड़ते-लड़ते ऊब उठे हैं। इसलिए वे अब सन्धि करना चाहते हैं। यह सन्धि दो ही तीन महीने में हो जायगी। तब सब रास्ते खुल जायँगे और व्यापारियों के आवागमन में कोई बाधा अथवा भीति न होगी। यथाविधि राजतिलक हो जाने पर, राजा अपने राज्य के कारोबार को राजा के समान करेंगे और प्रजा के कल्याण की ओर अधिक ध्यान देंगे। उस समय वे व्यापार की अवश्य वृद्धि करेंगे। अभी तक, देहली और बीजापुर के साथ लड़ाइयों में लगे रहने के कारण, वे इस ओर दृष्टि नहीं दे सके"।

अँगरेज़ी एलची को मालूम हो गया कि नारायण पण्डित बहुत योग्य और बुद्धिमान् पुरुष है और शिवाजी उसका बहुत आदर करता है। इसलिए चलते समय उसने पण्डित को एक हीरे की अँगूठी नज़र की और उसके जेठे पुत्र को दो अच्छे-अच्छे चोग़े दिये।

पुनचरा में अँगरेज़ी दूत को गरमी से बहुत कष्ट होता था। इसी समय शिवाजी प्रतापगढ़ से रायरी लौट आया। इसलिए एलची ने नारायण पण्डित से रायरी के क़िले में उठ जाने की अनुमति चाही। पण्डित ने शिवाजी की आज्ञा से अनुमति दे दी। इसलिए अँगरेज़ी दूत प्रसन्नतापूर्वक

क़िले में चला गया। वहाँ उसके रहने के लिए एक अच्छा मकान दिया गया।

क़िले में पहुँचने के चार दिन बाद, नारायण पण्डित के कहने से, शिवाजी ने अँगरेज़ी दूत से मिलना स्वीकार किया। यद्यपि, उस समय, अपने राज-तिलक और विवाह आदि कई बड़े-बड़े कामों के कारण शिवाजी को बहुत कम अवकाश था, तथापि उसने, कुछ देर के लिए, उस दूत को सभा में आने की आज्ञा दी। यथा-नियम अँगरेज़ी दूत शिवाजी की सभा में प्रविष्ट हुआ। आकर उसने शिवाजी और उसके पुत्र सम्भाजी को, जो कुछ भेंट करना था किया। इस भेंट से शिवाजी बहुत प्रसन्न हुआ। उसने कहा कि उसके राज्य में अँगरेज़ निर्भयता-पूर्वक व्यापार कर सकते हैं, क्योंकि अब सब प्रकार शान्ति है; लूट-मार और लड़ाई का डर नहीं रहा। अँगरेज़ी एलची ने कहा—"इसी लिए प्रेसिडेंट ने उसे भेजा है। वह यही चाहता है कि अँगरेज़ों को दक्षिण में उन्हीं शर्तों पर व्यापार करने की अनुमति मिले जिन शर्तों पर वे हिन्दोस्तान और फ़ारिस में व्यापार करते हैं"। इस पर शिवाजी ने मोरो पन्त पेशवा को उन शर्तों पर विचार करने के लिए आज्ञा दी और आप, अपने पुत्र समेत, राजतिलक-सम्बन्धी बात-चीत करने के निमित्त, भीतर चला गया। इधर अँगरेज़ी एलची भी अपने डेरे को लौट आया।

इस समय शिवाजी ने ५६,००० रुपये के मोल की अशरफ़ियों का तुलादान किया। यह धन, राज-तिलक होने पर,

ब्राह्मणों को बाँट दिया गया। साथ ही और भी बहुत सा द्रव्य दान किया गया।

व्यापार की शर्तों के विषय में जब अँगरेज़ी दूत ने नारायण पण्डित से पूछा तब उसे विदित हुआ कि दो शर्तों को छोड़कर शेष सब शर्तें शिवाजी ने मंज़ूर कर लीं। अँगरेज़ों की इच्छा थी कि उनका सिक्का शिवाजी के राज्य में, और शिवाजी का सिक्का उनके यहाँ, चल जाय। यह शर्त शिवाजी ने मंज़ूर नहीं की। उसने कहा कि यदि अँगरेज़ी सिक्का इस योग्य होगा कि लोग उसे और सिक्कों के समान बिना हानि के काम में ला सकें तो वे उसे अवश्य ही लेंगे। नियम करने की आवश्यकता नहीं। दूसरी शर्त यह थी कि अँगरेज़ों के जहाज़, या उनका माल-असबाब, यदि कोंकण के सामुद्रिक किनारे में लुट जाय, अथवा तूफ़ान से डूब जाय, तो उससे होनेवाली हानि पूरी कर दी जाय। इसे भी शिवाजी ने नामंज़ूर किया। उसने कहा कि यदि यह शर्त अँगरेज़ों से की जायगी तो डच और फ्रेञ्च भी वही शर्त करना चाहेंगे। इन दो शर्तों को छोड़कर और सब शर्तें शिवाजी ने स्वीकार कर लीं और अँगरेज़ों से सब प्रकार मैत्री रखना भी अङ्गीकार किया।

रायरी में अँगरेज़ी दूत को एक महीना हो गया। इतने में नारायण पण्डित ने, एक दिन, कहला भेजा कि कल प्रातः-काल ७ बजे शिवाजी की राज-गद्दी होगी। इसलिए, उस

अवसर पर, आप भी कृपा करके पधारिए। ऐसे समय में ख़ाली हाथ आना उचित नहीं होता। अतएव राजा को भेंट करने के लिए कोई छोटी-मोटी चीज़ भी आप अपने साथ लाइएगा। अँगरेज़ी दूत ने इस निमन्त्रण को ख़ुशी से स्वीकार किया।

दूसरे दिन प्रातःकाल जब अँगरेज़ी दूत, अपने साथियों समेत, शिवाजी के दरबार में पहुँचा तब उसने शिवाजी को एक विशाल और देदीप्यमान सिंहासन पर बैठा देखा। उसके सरदार बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहने हुए उसके दोनों ओर खड़े थे। सम्भाजी, मोरो पन्त पेशवा और एक पण्डित सिंहासन के नीचे बैठे थे। शेष सब लोग बड़े आदर और नम्र भाव से खड़े थे। अँगरेज़ी दूत ने शिवाजी को दूर से सादर सलाम किया। उसकी भेंट की हुई हीरे की अँगूठी को नारायण पण्डित ने अपने हाथ में लेकर शिवाजी के सामने किया। शिवाजी ने उसकी ओर नज़र उठाई और अँगरेज़ी दूत को अपने सिंहासन के पास तक बुलाया। वहाँ उसके पहुँचने पर उसे ख़िलत हुई और वह फिर अपने पहले स्थान को लौट आया। उसने वहाँ से देखा कि शिवाजी के सिंहासन की दाहिनी ओर सुवर्ण की दो बड़ी-बड़ी मछलियाँ लटक रही थीं और बाईं ओर सुवर्ण का एक तराज़ू भाले पर टँगा था। इसके दो दिन बाद शिवाजी ने एक मनोहर कन्यारत्न से विवाह किया। यह उसकी चौथी रानी हुई।

कुछ काल के अनन्तर शर्तनामे पर हस्ताक्षर कराकर अँगरेज़ी दूत बम्बई लौट आया। तब से शिवाजी और अँगरेज़ों में मित्रता की स्थापना हुई।

१६७७ ईसवी में शिवाजी ने कर्नाटक पर चढ़ाई की। तब तक अँगरेज़ों ने मदरास में भी अपना प्रभुत्व जमा लिया था। वहाँ उस समय स्ट्रनशम मास्टर्स नामक एक अँगरेज़ गवर्नर था। शिवाजी की चढ़ाई के सम्बन्ध में उसने अपनी दिनचर्य्या में इस प्रकार लिखा है—

"१४ मई १६७७। आज शिवाजी का पत्र आया। एक ब्राह्मण उसे लाया। उसके साथ दो आदमी और भी थे। इस पत्र में शिवाजी ने कुछ दवाइयाँ इत्यादि माँगी हैं। हम लोगों ने दवाइयाँ भी भेज दीं और शिष्टतासूचक एक पत्र के साथ कुछ फल भी भेज दिये। पत्र लानेवाले ब्राह्मण को कुछ कपड़ा और चन्दन दिया गया। शिवाजी ने दवाइयों का दाम देना चाहा था, और अपने पत्र में यह बात लिख भी दी थी; परन्तु ऐसी तुच्छ चीज़ों का दाम लेना उचित नहीं समझा गया। शिवाजी बहुत बड़ा आदमी है। इसकी मित्रता से हमारी माननीय कम्पनी को लाभ पहुँच चुका है; और जैसे-जैसे उसकी शक्ति बढ़ती जाती है वैसे-वैसे और भी अधिक लाभ की सम्भावना है"।

इस अवसर पर जो नज़र शिवाजी को भेजी गई उसका मूल्य सिर्फ़ कोई २१०) रुपये था। इसके अनन्तर कुछ दिनों

में शिवाजी ने फिर थोड़ी सी दवाइयाँ इत्यादि मदरास के गवर्नर से मँगाईं। गवर्नर ने, इस बार भी, प्रसन्नता-पूर्वक शिवाजी की इच्छा पूर्ण की। उस समय शिवाजी से सारा देश डरता था। मदरास के अँगरेज़ तो कई बार यह सुनकर भयभीत हुए थे कि शिवाजी डच और अँगरेज़ी ज़मींदारियों पर चढ़ाई करके उन्हें छीन लेना चाहता है। कुछ समय बाद, जब उन्होंने सुना कि शिवाजी माइसोर के नायक से कई रुधिर-वर्षी लड़ाइयाँ करके अपने देश को लौट गया तब वे बहुत प्रसन्न हुए और उनके जी में जी आया।

[अप्रेल १९०४

६—फ़र्रुख़सियर और अँगरेज़ी एलची

कलकत्ते के आसपास पहले पोर्चुगीज़ लोगों की बड़ी प्रभुता थी। अँगरेज़ों का प्रवेश वहाँ नहीं हुआ था। पोर्चुगीज़ों ने हुगली में एक दृढ़ क़िला बना लिया था; तोपें रक्खी थीं; फ़ौज भी उनके पास बहुत थी। वे लोग ग़ुलामों का व्यापार भी करते थे। यह सब करके बङ्गाले के नव्वाब का हुक्म न मानते थे। जब इसकी रिपोर्ट शाहजहाँ को पहुँची तब वह जलकर ख़ाक हो गया। वह फिरङ्गियों से पहले ही से नाराज़ था। फ़ौरन ही उसने एक सेना भेजी। हुगली घेर ली गई। पोर्चुगीज़ों का क़िला सुरङ्ग से उड़ा दिया गया; उनके जहाज़ जला दिये गये; और सैकड़ों नर-नारियाँ क़ैद करके आगरे भेज दिये गये; पोर्चुगीज़ों की युवा लड़कियाँ और स्त्रियाँ शाही महलों में दाख़िल कर ली गईं। कुछ लड़के और लड़कियाँ अमीरों को बाँट दी गईं। कितने ही पोर्चु-गीज़ ज़बरदस्ती मुसल्मान बनाये गये। यह घटना १६३२ ईसवी में हुई।

अँगरेज़ों की इच्छा बहुत दिन से बङ्गाले में व्यापार करने की थी। शाहजहाँ अँगरेज़ों से उतना नाराज़ न था जितना पोर्चुगीज़ों से था। इसलिए प्रयत्न और परिश्रम से, १६३३ ईसवी में, कलकत्ते के पास व्यापार करने का हुक्म अँगरेज़ों

ने प्राप्त कर लिया और पिपली में उन्होंने अपना कारोबार शुरू किया। १६४० में शाहजहाँ की एक शाहज़ादी के कपड़ों में आग लग गई। इससे उसका तमाम बदन झुलस गया। शाहजहाँ ने अँगरेज़ी डाक्टरों की प्रशंसा सुन रक्खी थी। अतएव उसने सूरत की कोठी के अँगरेज़ी एजेंट को चिट्ठी लिखकर वहाँ से एक डाक्टर बुलवाया। सूरत के व्यापारी अँगरेज़ों ने डाक्टर गैबरायल बौटन को तत्काल ही भेजा। इस डाक्टर ने शाहज़ादी को बिलकुल अच्छा कर दिया। इस पर शाहजहाँ बहुत ख़ुश हुआ। उसने डाक्टर से पूछा कि इस नीरोगता के बदले में तुम्हें क्या पारितोषिक दिया जाय। डाक्टर बड़ा देशभक्त और उदाराशय था। उसने कहा—"अँगरेज़ लोग बङ्गाले में स्वाधीनता से व्यापार करने पावें और उनके माल पर महसूल न लगे"। यह बात शाहजहाँ ने प्रसन्नतापूर्वक मान ली और उसी वक़्त फ़रमान लिख दिया। यह फ़रमान लेकर डाक्टर बौटन पिपली को रवाना हुए। वहाँ जाते ही एक अँगरेज़ी जहाज़ को उन्होंने महसूल से बचाया। उस समय शाहजहाँ का दूसरा लड़का शाहशुजा बङ्गाले का गवर्नर था। दैवयोग से उसकी एक बेगम बीमार पड़ी। उसको भी इस डाक्टर ने आराम कर दिया। इस उपलक्ष्य में शाहशुजा ने अँगरेज़ों को हुगली में पहले पहल कोठी बनाने का हुक्म दिया। तब से अँगरेज़ों की प्रभुता बढ़ने लगी और उनके

माल पर जो चुंगी लगती थी उसके माफ़ हो जाने से उनको फ़ायदा भी बेहद होने लगा। इस समय से डाक्टर हैमिल्टन का मान बढ़ा। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उन्हें बड़े-बड़े अधिकार दिये। उनकी निःसीम स्वजाति-प्रीति के कारण उनका नाम अजरामर हो गया।

१७०७ ईसवी में मुरशिद-क़ुली ख़ाँ बङ्गाले का गवर्नर हुआ। 'मुरशिदाबाद' में 'मुरशिद' शब्द इसी के नाम का बोधक है। पहले तो वह अँगरेज़ों से नहीं बोला; परन्तु जब उसने अपना दबदबा जमा लिया तब वह, अन्यान्य हिन्दू ज़मींदारों और नरेशों की तरह, उनको भी तङ्ग करने लगा। पहले शाही फ़रमानों की उसने कुछ परवा न की। उसने कहा कि या तो तुम लोग अपने माल पर पूरा-पूरा महसूल दो, या उसके बदले, समय-समय पर, समुचित नज़्र दिया करो। इन बातों से अँगरेज़-व्यापारी दिक़ आ गये। उन्होंने विलायत में कम्पनी के डाइरेक्टर्स को लिखकर इस बात की आज्ञा माँगी, कि देहली के बादशाह के पास एक एलची भेजा जाय; वह बङ्गाले के नव्वाब गवर्नर के अन्याय की सूचना बादशाह को दे; और पुराने शाही फ़रमान को फिर से नया करावे। डाइरेक्टर्स ने इसे मंज़ूर किया। इस पर, १७१५ ईसवी में, कलकत्ते से एक दूत-मण्डली रवाना हुई। बम्बई और मदरास के अँगरेज़ी गवर्नरों ने भी अपनी-अपनी शिकायतें कलकत्ते के गवर्नर को भेजीं। वे सबकी एक सूची बनी,

और बनकर, बादशाह को भेंट की जानेवाली चीज़ों के साथ, इस मण्डली के सिपुर्द हुई।

उस समय देहली की बादशाहत का उपभोग फ़र्रुख़सियर कर रहे थे। आप नाम मात्र के लिए बादशाह थे। बादशाही सूत्र सैयद अबदुल्ला और सैयद हुसेन दो भाइयों के हाथ में था। इन सैयद-बन्धुओं का एक प्रतिद्वन्द्वी भी था। उसका नाम था ख़ान दौरान। वह भी बड़ा प्रभावशाली अमीर था।

कलकत्ते के गवर्नर हेज्यस साहब ने दो अँगरेज़ों को एलची बनाया। एक जान सरमन, दूसरा एडवर्ड स्टेफ़न्सन। विलयम हैमिल्टन नामक एक सरजन (डाक्टर) भी इस दूतद्वय के साथ भेजा गया। ये लोग यहाँ की भाषा में बिलकुल कोरे थे। इसलिए ख़्वाजा सरहाद नामक एक आरमीनिया का व्यापारी, दुभापिये का काम करने के लिए, इन तीनों के साथ रवाना हुआ। बादशाह और उसके अमीरों को नज़्र करने के लिए काँच की चीज़ें, घड़ियाँ, बढ़िया रेशम के थान, और ऊन के बेश क़ीमती शाल और चोगे इत्यादि लिये गये। इन सबकी क़ीमत कोई ४,५०,००० रुपये होगी। परन्तु ख़्वाजा सरहाद ने इस विषय में जो पत्र देहली भेजे उनमें उसने इस ४,५०,००० को, अपनी स्वाभाविक अतिशयोक्ति के वशीभूत होकर, १५,००,००० कर दिया! नज़्र की चीज़ों का वर्णन उसने ऐसे बढ़ावे के

साथ लिखा कि फ़र्रुख़सियर ने अपने सूबेदारों को हुक्म दिया कि इस माल-असबाब की वे खूब ख़बरदारी रक्खें; और जब तक उनके सूबे से अँगरेज़ी दूत पार न हो जायँ तब तक वे अपने को उसके ज़िम्मेदार समझें। ये अँगरेज़ी दूत कलकत्ते से पटना तक नावों में आये; वहाँ से देहली को सड़क-सड़क। तीन महीने में वे देहली पहुँचे। जिस दिन उन्होंने देहली में क़दम रक्खा उस दिन १७१५ ईसवी के जुलाई महीने की आठवीं तारीख़ थी। देहली पहुँचकर अँगरेज़ी एलचियों ने सैयद-बन्धु और ख़ान दौरान, दोनों, की कृपा सम्पादन करने का यत्न किया।

इन अँगरेज़ी दूतों ने देहली से जो पत्र कलकत्ते के गवर्नर को भेजे थे वे अब तक मदरास में सुरक्षित हैं। अँगरेज़ों का पुराना पत्र-व्यवहार कलकत्ते से मदरास भेज दिया गया था; क्योंकि कलकत्ते की अपेक्षा, उस समय, मदरास अधिक महफ़ूज़ समझा जाता था। इन्हीं पत्रों की मुख्य-मुख्य बातों का मतलब हम नीचे देते हैं।

देहली, ८ जुलाई १७१५—जाटों के देश को हम लोगों ने सकुशल पार किया। रास्ते में कोई विशेष तकलीफ़ नहीं हुई। एक बार रात को चोरों ने सताया; परन्तु हम लोगों ने उन्हें मारकर निकाल दिया। ३ जुलाई को हम लोग फ़र्रुख़ाबाद पहुँचे। वहाँ पर पादरी स्टिफ़ेन्स मिले। उन्होंने दो सरोपा हमारी भेंट किये। जान सरमन और ख़्वाजा सरहाद ने उनको

मामूली रस्म के साथ क़बूल किया। पादरी को हमने आगे भेज दिया, जिसमें हमारे स्वागत का सब प्रबन्ध ठीक-ठीक हो जाय; और, यदि हो सके, तो हम देहली पहुँचकर पहले ही दिन बादशाह से मिलें। ७ तारीख़ को हमने शहर में प्रवेश किया। हमसे मिलने के लिए एक दो हज़ारी मनसबदार भेजा गया। उसके साथ दो सौ सवार और पैदल थे। दो हाथी थे; शाही झण्डियाँ भी थीं। शहर के बीचो बीच नव्वाब सलाबत ख़ाँ ने हमारी पेशवाई की। उसके साथ हम शाही महल को गये, और बारह बजे तक जब तक बादशाह नहीं निकला, हमको वहीं ठहरना पड़ा। इस बीच में हमने ख़ान दौरान से भेंट की। उसने हमारे साथ बड़ी ही शिष्टता का व्यवहार किया; और सब प्रकार सहायता देने का वचन दिया। बादशाह की पहली नज़र के लिए हमने इतनी चीज़ें तैयार कीं—

(१) १००१ अशरफ़ियाँ।
(२) रत्नों से जड़ी हुई मेज़ पर रखने की घड़ी।
(३) गैंड़े का सींग।
(४) सोने का क़लमदान।
(५) तृण-मणि अर्थात् अम्बर की छड़ी।
(६) मनिल्ला की बनी हुई चिलमची।
(७) भूगोल का नक़शा।

ये सब चीज़ें माननीय गवर्नर के पत्र के साथ बादशाह को भेंट की गईं। दस्तूर के मुताबिक़ एक-एक आदमी ने

एक-एक चीज़ को हाथ में लेकर नज़र किया। जान सरमन ने अबा (चोगा) और रत्नजटित कलगी पाई; सरहाद को भी रत्नखचित कलगी मिली। हम लोगों का अच्छा स्वागत हुआ। घर आने पर ख़ान दैारान के नायब सलाबत ख़ाँ ने हमारी दावत की। शाम को वह हमारे घर पर फिर आया; और कोई दो घण्टे तक ठहरा। ख़ान दैारान का बड़ा- दैार-दैारा है; बादशाह उसको बहुत चाहता है। इससे हम लोगों को अपने काम में सफल-मनोरथ होने की पूरी-पूरी आशा है। वज़ीर आज़म से भी हम लोग मिलेंगे।

देहली, १७ जुलाई। मानमूर्ति, आपको हम अपने सकुशल पहुँचने और बादशाह से मिलने का समाचार भेज चुके हैं। तब से हमने कई अमीरों से मुलाक़ात की; वज़ीर अब्दुल्ला ख़ाँ से भी हम लोग मिले, और ख़ान दैारान से भी। सब लोग हमसे बहुत ही अच्छी तरह पेश आये। काम सफल होने के अच्छे चिह्न देख पड़ते हैं। यहाँ के अमीर ऐसे हैं कि जब तक उनको यह उम्मेद रहती है कि इनसे कुछ मिलेगा तब तक वे बड़ी ही ख़ुश अख़लाक़ी से पेश आते हैं—तब तक वे पराकाष्ठा की सभ्यता और शिष्टता दिखलाते हैं। परन्तु यह उम्मेद न रहने पर उनकी सारी सुशीलता हवा हो जाती है। इन्हीं बातों का विचार करके हम लोग ज़ीदी ख़ाँ की सलाह से काम कर रहे हैं। ११ तारीख़ को हम उससे मिले थे। वह बहुत अच्छी तरह

हमसे मिला; अँगरेज़ों के साथ उसका वर्ताव हमेशा ही अच्छा रहा है। अँगरेज़ों ने जो उपकार उस पर किये हैं—जो कुछ उन्होंने उसे दिया है—उसे वह भूला नहीं। तदर्थ वह बहुत कृतज्ञ है। वह, इस अवसर पर, हमारा काम करके उस कृतज्ञतारूपी ऋण के कुछ अंश से मुक्त होना चाहता है। उसकी राय है कि ख़ान दौरान से बिना पूछे और उसकी बिना सम्मति के हमें कुछ न करना चाहिए। वह कहता है कि शाही दरबार की हालत ही ऐसी हो रही है कि हम लोग ख़ान की सहायता बिना कुछ न कर सकेंगे। यह बात उसने मुँह से ही नहीं कही; लिखकर भी ज़ाहिर की है। परन्तु हम लोग वज़ीर को भी प्रसन्न रखना चाहते हैं। इसका भी हम बन्दोबस्त कर रहे हैं। कामयाबी की पूरी उम्मेद है; इसलिए ख़्वाजा सरहाद भी बहुत ख़ुश है। उसे पूरी आशा है कि जो पारितोषिक हम लोगों ने उसे देने कहा है उसे वह, हमारे काम को सफल करके, अवश्य प्राप्त करेगा।

देहली, ४ अगस्त। यहाँ हमारे पहुँचने के तीन दिन बाद बादशाह देहली से कूच कर गया। यहाँ से तीन कोस पर एक पवित्र स्थान है। वहाँ जाने का बहाना करके वह गया है। परन्तु बात और ही है। क़िले के भीतर वह एक प्रकार क़ैद सा था। इस क़ैद से रिहाई पाने के लिए, लोग कहते हैं, उसने ऐसा किया है। इस पर अमीरों ने शहर में वापस आने के लिए बादशाह से प्रार्थना की और कहा कि वर्षा निकट

है, इसलिए यह मौसम बाहर जाने लायक़ नहीं। परन्तु लौटना तो दूर रहा, अब बादशाह ने लाहौर या अजमेर जाने का इरादा किया है। लाख समझाने पर भी उसने देहली वापस आना मंज़ूर नहीं किया। यह ख़बर सुनकर हम लोग चौंक उठे; हमको बड़ा अफ़सोस हुआ। इतना कष्ट उठाकर और इतनी दूर से लाकर अब हम इन बेशक़ीमती चीज़ों को, बरसात में, कहाँ लिये-लिये फिरेंगे। यह सोचकर, बादशाह की ग़ैरहाज़िरी ही में, हमने अपने साथ भेंट में देने के लिए लाई हुई प्रायः सभी चीज़ों को दे डालना चाहा। परन्तु जब हम दो-एक बहुत नफ़ीस और क़ीमती घड़ियाँ देने लगे तब वे वापस कर दी गईं और यह हुक्म हुआ कि हम लोग उनको चलती रक्खें और बादशाह के लौट आने पर फिर उन्हें हाज़िर करें। अब बादशाह ने अपना पहला इरादा बदल दिया है। देहली से ४० कोस पर एक पवित्र स्थान है। वहाँ से वापस आने का उसने निश्चय किया है। इसलिए हमने भी अपना इरादा बदल दिया। जो कुछ हमारे पास बच रहा था उसे हमने रख छोड़ा। परन्तु हमने दौरे ही में बादशाह से मिलना मुनासिब समझा। इस समय हम लोग बादशाह के साथ सफ़र में हैं। केवल स्टिफ़न्सन और फ़िलिप्स देहली में हैं। जो कुछ माल-असबाब बचा है वह उन्हीं के पास है। यदि बादशाह और कहीं का लम्बा सफ़र करना चाहेगा तो स्टिफ़न्सन और फ़िलिप्स बची हुई चीज़ें लेकर हमारे पास चले

आवेंगे। बादशाह के सामने पेश करने के लिए, इस दरमियान में, हम एक प्रार्थना-पत्र तैयार कर रहे हैं। हमको आशा है कि हम अपने महामान्य स्वामिवर्ग के लिए कोई ऐसा काम कर सकेंगे जो आज तक किसी ने नहीं किया। इस सम्बन्ध का सारा काम ख़ान दौरान और उसके नायब सैयद सलावत ख़ाँ ने बड़ी कृपा करके अपने हाथ में लिया है। ख़ान दौरान का शाही दरबार में बड़ा मान है। परन्तु हम लोग ज़ौदी ख़ाँ को भी नहीं भूले। वह हम लोगों का पुराना दोस्त है। बिना उसकी सलाह के हम कोई काम नहीं करते। यद्यपि बादशाह तक उसकी पहुँच नहीं है, तथापि वज़ीर के दरबार में उसकी ख़ूब चलती है।

कुछ दिन हुए, हुसेनअली ख़ाँ दक्षिण को चला गया। वहाँ का सब अधिकार उसी को मिला है। इस समय वह दक्षिण का गवर्नर है। श्रीमानों ने सुना ही होगा कि इस पुरुष का प्रभुत्व, माहात्म्य और बल कितना बढ़ गया है। यहाँ तक कि वह बादशाह की भी परवा नहीं करता। थोड़े ही दिन की बात है कि उससे और अमीर जुम्ला* से वैमनस्य हो गया। बादशाह अमीर जुम्ला को दरबार में रखना चाहता था, परन्तु उसकी इच्छा के ख़िलाफ़ हुसेन ने उसे पटना भेज दिया। वहाँ पर कुछ हुसेन की कुटिल नीति से और कुछ

---

* औरङ्गज़ेब के समय के मीर जुम्ला से यह अमीर जुम्ला जुदा है। फ़र्रुख़सियर की इस पर बड़ी मिहरबानी थी।

अपनी मूर्खता से वह बिलकुल ही बरबाद हो गया। इसलिए हम बहुत नम्रता से सिफ़ारिश करते हैं कि मान-मूर्ति, आप हुसेन के साथ ज़रूर पत्र-व्यवहार शुरू करें। नहीं तो जो कुछ हम यहाँ करेंगे वह सब उसके सामने कौड़ी काम का न ठहरेगा।

देहली, ३१ अगस्त। हमने सुना है कि हुसेनअली ख़ाँ और दाऊद ख़ाँ में बिगाड़ हो गया है। दाऊद ख़ाँ वही है जिसने, गवर्नर पिट के समय में, मदरास को घेरा था। वह आजकल गुजरात का गवर्नर है। उसकी और हुसेन की जब से बुरहानपुर में मुलाक़ात हुई तब से परस्पर फूट पड़ गई है। सम्भव है, दोनों में लड़ाई छिड़ जाय। यहाँ तो यह काना-फूसी हो रही है कि बादशाह ने जान-बूझकर हुसेनअली को फँसाने के लिए यह जाल फैलाया है। उसकी प्रभुता बहुत बढ़ गई है; उसे बादशाह कम करना चाहता है। कोई-कोई तो यहाँ तक कहते हैं कि दाऊद ख़ाँ को गुप्त आज्ञा है कि किसी तरह वह हुसेन का काम तमाम कर दे।

बादशाह पानीपत से आगे नहीं बढ़ा। वहाँ से १५ तारीख़ को वह देहली वापस आया। परन्तु उसकी तबियत कुछ नासाज़ सी है। इसलिए वह बाहर नहीं निकला। इसी कारण हम लोगों को भी बची हुई चीज़ें उसे भेंट करने का मौक़ा नहीं मिला; और न अपने मतलब की बात ही हम उसके कानों तक पहुँचा सके।

देहली, ६ आक्टोबर। हम लोगों ने यह इरादा कर लिया था कि पहला मौक़ा हाथ आते ही हम बची हुई चीज़ें बादशाह को भेंट करेंगे; परन्तु बादशाह की प्रकृति अभी तक नहीं सुधरी। डाक्टर हैमिल्टन ने आराम कर देने का वादा किया है; आजकल वही दवा कर रहे हैं। हमारे शुभचिन्तकों की यह राय है कि जब तक बादशाह को आराम न हो तब तक हम लोग कोई कारखाई न करें। हम भी यही अच्छा समझते हैं। बीमारी की हालत में बादशाह से कुछ कहना पागलपन है। ईश्वर करे उसे शीघ्र आराम हो; हम उसी का रास्ता देख रहे हैं। जब डाक्टर हैमिल्टन ने पहले पहल दवा करना आरम्भ किया तब बादशाह की जाँघ की जड़ में सूजन थी। ईश्वर को धन्यवाद है, वह शिकायत तो प्रायः जाती रही है। परन्तु कुछ दिनों से दर्द बहुत बढ़ गया है; और डर लगता है कि कहीं नासूर—भगन्दर (Fistuler)—न हो जाय। इसी लिए बादशाह बाहर नहीं आ सकता; और इसी लिए सब काम-काज बन्द है। हम लोग भी इस देरी को धीरज से सहन कर रहे हैं। क्योंकि और हम कर ही क्या सकते हैं ?

श्रीमानों ने सुना होगा कि हुसेनअली के साथ लड़ाई में दाऊद ख़ाँ मारा गया। उसकी जीत होने ही वाली थी कि उसे, एकाएक, गोली लगी। इसलिए शाही दरबार में बड़ी गड़बड़ मची है। बादशाह और उसके हितचिन्तकों ने

जो बात चाही थी उसका उलटा हुआ। प्रबन्ध हुआ था हुसेनअली के नाश का; परन्तु उसका माहात्म्य अब और भी बढ़ गया है। इस विषय में बादशाह ने हुसेन के भाई अब्दुल्ला से कुछ अप्रसन्नता प्रकट की; परन्तु बादशाह की उम्मेद के ख़िलाफ़ अब्दुल्ला को यह शिकायत पसन्द न आई। अतएव, लाचार होकर, बादशाह को ऊपरी मन से हुसेन की प्रशंसा करनी पड़ी; और उसे ख़िलअत भी भेजनी पड़ी। हम लोगों ने मदरास के कौंसिल और गवर्नर को जो पत्र भेजे हैं, उनमें हमने इस बात की सिफ़ारिश की है कि इस अमीर आज़म की दोस्ती का बहुत ख़याल रक्खा जाय। ऐसा न करने से, मदरास के लिए जो कुछ बेहतरी का काम हम लोग यहाँ करेंगे वह, बिना हुसेनअली की मेहरबानी के, व्यर्थ हो जायगा।

देहली, ७ दिसम्बर। मानमूर्ति, आप श्रीमानों को हम बादशाह के आराम होने के शुभ समाचार देते हैं। २३ नवम्बर को बादशाह ने स्नान किया और दरबार के अमीर-उमरा की मुबारकबादी कुबूल फ़रमाई। डाक्टर हैमिल्टन की कामयाबी पर प्रसन्न होकर ३० नवम्बर को उसने, भरे दरबार में, एक अबा, रत्नखचित एक कलगी, दो हीरे की अँगूठियाँ, एक हाथी, एक घोड़ा और ५०००) रुपये नक़द दिये। साथ ही बादशाह ने यह भी हुक्म दिया कि हैमिल्टन के सारे डाक्टरी शस्त्र सोने के बनवा दिये जायँ; उसके कोट और बासकट के बटन भी सोने के बनें; और उसके जितने 'नश्तर' हों सब पर नगीने

लगा दिये जायँ। दुभाषिये का काम करने के लिए, इसी दिन, ख़्वाजा सरहाद को भी एक अश्व और एक हाथी पारितोषिक में मिले।

इससे हम लोगों को अपार आनन्द हुआ। जिस बात के लिए हम यहाँ आये हैं उसकी कामयाबी का यह अच्छा लक्षण है। अपनी दरख़्वास्त पेश करने के लिए हम इसी मौक़े को देख रहे थे। अतएव ख़ान दौरान की सलाह से, बादशाह के आराम होते ही, हमने बाक़ी बची हुई चीज़ें उसको नज़्र कर दीं। कुछ हमने रख छोड़ी हैं। बादशाह की शादी* हो चुकने पर हम उन्हें भेंट करेंगे। नज़्र गुज़ारने के बाद हमने अपनी दरख़्वास्त ख़ान दौरान के हवाले की। वह उसे बादशाह के सामने पेश करेगा। आज तक हमने इस विषय की सब कारवाई सलाबत ख़ाँ की मारफ़त की थी। परन्तु इस समय उसकी तबियत अच्छी न थी। इसलिए हमने अपने ही हाथ से दरख़्वास्त ख़ान दौरान को दी। तथापि सलाबत ख़ाँ का सिफ़ारशी ख़त दरख़्वास्त के साथ नत्थी करना हम नहीं भूले। जब से हमने यह दरख़्वास्त दी तब से ख़्वाजा सरहाद कई बार ख़ान दौरान से मिला और उसको उसे याद दिलाई। परन्तु ख़ान दौरान कहता है कि जब तक बादशाह

---

* मारवाड़ की किसी कुमारी से फ़र्रुख़सियर की शादी होनेवाली थी। बीमारी के कारण वह रुक गई थी। आराम होते ही बादशाह ने उस कुमारिका का कर ग्रहण किया।

की शादी न हो जायगी तब तक कोई काम न होगा। उसके हो चुकने पर, ख़ान दौरान ने हमारा काम फ़ौरन ही करने का वादा किया है। इस विवाह के उपलक्ष्य में सब दफ़्तर बन्द हैं; राज्य का सारा काम रुका हुआ है। अतएव हम लोगों को इस देरी पर अप्रसन्नता प्रकट करने अथवा असन्तुष्ट होने का कोई विशेष कारण नहीं।

इस सम्बन्ध से मारवाड़वालों का मान बहुत बढ़ेगा; उनकी बड़ी इज़्ज़त होगी। सब रस्में उन्हीं के इच्छानुसार करना बादशाह ने क़बूल कर लिया है। आज शाम को वह अपनी भावी बेगम का स्वागत करने जायगा। उसके साथ जितने अमीर-उमरा होंगे सब पैदल रहेंगे। क़िले और शहर में ख़ूब रोशनी होगी। इस जलसे की तैयारी दो महीने से हो रही है। इसके लिए हिन्दुस्तान की अनन्त सम्पत्ति लगा देने का इरादा बादशाह ने कर लिया है।

देहली, ८ जनवरी १७१६। हमारे ईप्सित काम की स्थिति जहाँ की वहाँ है। अभी तक कामयाबी नहीं। यद्यपि उसे हमने शाही दरबार के बहुत बड़े आदमी को सौंपा है और यदि वह चाहे तो फ़ौरन ही हमारा काम हो जाय, परन्तु उसके काम करने का तरीक़ा अच्छा नहीं; उसमें बड़ी देर होती है। हम लोग लाचार हैं। हमको सब्र करना पड़ेगा। उतावलेपन से काम नहीं चलेगा। हमारी दरख़्वास्त दफ़्तर में पहुँच गई; वहाँ उसकी जाँच-पड़ताल हो चुकी। अब फ़र-

मान पर हज़रत सलामत के दस्तख़त होना बाक़ी है। हो चुकने पर हम आप मानमूर्तियों को उसका पतेवार हाल लिखेंगे।

इसी बीच में बादशाह के बाहर जाने की बात सुनकर हम लोग फिर चौंक पड़े। पर ईश्वर की कृपा से उसका जाना रुक गया है। इस देरी का जहाँ तक उपयोग हमसे हो सकेगा करेंगे; परन्तु, हम यह नहीं कह सकते कि बादशाह के जाने के पहले ही हम अपना काम पूरा कर सकेंगे।

दो दिन हुए, अमीर जुम्ला बिहार से यहाँ एकाएक आ पहुँचा। उसके साथ केवल १० सवार थे। उसे इस तरह आते देख लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। लोगों ने ख़बर उड़ाई है कि तनख़्वाह न पाने के कारण उसकी फ़ौज बाग़ी हो गई; इसी लिए वह वहाँ से भाग आया है। हम नहीं कह सकते, यह बात कहाँ तक सच है। हमको यह भी नहीं मालूम कि बादशाह उससे कैसे पेश आवेगा।

देहली, १० मार्च। सम्मानमूर्ति, आपने उड़ती हुई ख़बर सुनी होगी कि गुज़श्ता महीने में इस शहर पर क्या-क्या विपदायें आईं। यह सब अमीर जुम्ला और उसके बाद उसकी फ़ौज के चले आने से हुआ। सुनते हैं, बादशाह के बिना हुक्म यह भागा-भागी हुई। फ़ौज में जितने तावारी थे सब एक हो गये। वे बलवा करने पर आमादा हुए; यहाँ तक कि उन्होंने वज़ीर आज़म या ख़ान दीवान से ज़बरदस्ती

अपनी तनख़्वाह वसूल कर लेने की धमकी दी। यह दशा देखकर देहली में सब कहीं फ़ौज ही फ़ौज देख पड़ने लगी। अकेले वज़ीर ही के पास २०,००० सवार हैं। उनसे शहर के रास्ते और गलियाँ भर गईं। जब वज़ीर बादशाह के पास जाता तब उसकी फ़ौज भी उसके साथ जाती। ख़ान दौरान की फ़ौज, अमीरों की फ़ौज, और ख़ुद बादशाही फ़ौज, २० दिन तक क़िले की निगरानी करती रही। वज़ीर ने क़स्द कर लिया कि जब तक ये तातारी अपना हिसाब ठीक-ठीक न समझावेंगे, और पटना लूट लेने की कैफ़ियत पूरे तौर पर न देंगे, तब तक उनको एक रुपया न मिलेगा। तातारियों को यह शर्त बिलकुल मंज़ूर न थी। पर जब उन्होंने देखा कि वज़ीर अपनी बात पर दृढ़ है और उनकी धमकी से नहीं डरता, तब उन्होंने हठ छोड़ी। इस पर उनके पक्ष के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सरदार तितर-बितर कर दिये गये। कोई कहीं भेज दिया गया कोई कहीं और अमीर जुम्ला के नाम शाही फ़रमान निकला कि वह लाहौर चला जाय। बादशाह अमीर जुम्ला से बहुत नाराज़ हुआ। उसने कुली ख़ाँ को हुक्म दिया कि वह अमीर जुम्ला को शहर के बाहर कर दे। उसकी जागीरें भी छीन ली गईं और ख़िताब भी छिन गये। परन्तु, यहाँ सब लोग कहते हैं कि यह तमाशा वज़ीर को फँसाने के लिए किया गया है; बादशाह उसे ज़िन्दा नहीं रखना चाहता। पर वज़ीर बड़ा चालाक है; वह ख़ूब ख़बरदार रहता है। अभी

तक उसका कोई बाल तक बाँका नहीं कर सका। अब बाग़ियों का जोश कम हो गया है; अब अशान्ति के कहीं कोई चिह्न नहीं देख पड़ते। यह वज़ीर की चतुरता का फल है। वह सचमुच बहुत लायक़ वज़ीर है। इस दंगे में तातारियों का सख़्त अपमान हुआ। दो-चार सरदारों को छोड़कर बाक़ी सब बरख़ास्त कर दिये गये। इस समय अमीर जुम्ला देहली से २० कोस पर है; वह लाहौर जा रहा है। अब उसको कुछ भी अधिकार नहीं। इस फ़साद के कारण, इस महीने, सब कचहरियाँ बन्द रहीं; कोई काम कहीं नहीं हुआ। हमारे काम की भी वही दशा हुई। एक महीना पहले उसकी जो हालत थी वही आज भी है। ख़ान दौरान कई दफ़े वादा कर चुका है कि बहुत जल्द वह हमारा काम कर देगा; पर उसकी ढिलाई की हद नहीं। ऐसा अजीब आदमी हमने नहीं देखा। फिर, उससे भेंट होना मुश्किल है। परन्तु लाचारी है; हम करें क्या सकते हैं? शिथिलता और बेपरवाही आदि दोष उसमें हैं अवश्य; पर, शाही दरबार में, वही सबसे बढ़ा-चढ़ा अमीर है। हमको भरोसा है कि एक न एक दिन वह हमारे काम का विचार करेहीगा। और यदि किसी दूसरी बात का नहीं तो अपने मान और अपनी प्रतिष्ठा ही का ख़याल करके हमारे अभीष्ट कार्य को वह सफल कर देगा।

सिक्खों का गुरु बाग़ी हो गया था। बीस बरस से लाहौर के सूबे में ग़दर मचाये था। लाहौर के गवर्नर ने उसे अन्त

में गिरफ़्तार कर लिया। उसके साथ उसके कुटुम्ब के आदमी और उसके शरीर-रक्षक भी पकड़े गये। कुछ दिन हुए, वे लोग लोहे से लदे हुए शहर में दाख़िल किये गये। सबके पैरों में बेड़ियाँ थीं। उनकी फ़ौज के ७८० आदमी भी क़ैद हुए हैं। वे ऊँटों पर सवार थे। लड़ाई में इन लोगों के २००० आदमी काम आये थे। उनके सिर नोकदार बाँसों पर खोंसकर देहली भेजे गये। वे भी सब साथ ही आये। बड़ा भयानक दृश्य था। इस निर्दयता का कहीं ठिकाना है! यह गुरु पहले बादशाह के सामने हाज़िर किया गया; फिर कारागार भेजा गया। वहाँ अभी कुछ दिन जीता रक्खा जायगा। उससे ये लोग उसके ख़ज़ाने का पता पूछते हैं। देहलीवालों ने सुना है कि उसका ख़ज़ाना पञ्जाब में कई जगह ज़मीन में गड़ा है। उससे उसके साथियों का पता भी पूछा जाता है। ये बातें पूछकर, न बतलाई हुई बाक़ी की बातों के लिए बाद में उसकी हत्या होगी। शिव! शिव! इसके १०० साथियों का सिर रोज़ उतारा जाता है; परन्तु वे लोग बड़े धैर्य्य और बड़ी बहादुरी से अपना सिर कटाते हैं। किसी के मुँह से 'आह' नहीं निकलती। इतनी निर्दयता और इतनी सख़्ती पर भी आज तक एक आदमी ने अपना नया मत छोड़कर मुसल्मानी धर्म नहीं स्वीकार किया।

देहली, २१ मार्च। अपने मेहरबान ख़ान दौरान की दीर्घसूत्रता, काहिली और ढीलेपन की शिकायत कई बार हमने

आप श्रीमानों से की है। वह बहुत कम बाहर निकलता है; और कभी किसी काम-काज के बारे में किसी को प्रत्यक्ष जवाब भी नहीं देता। इसलिए, जब वह अपनी बैठक से निकलकर पालकी पर सवार होता है तब, उतनी दूर और उतनी देर में, जो कुछ किसी को कहना हो वह कह सकता है। इस थोड़े से समय में बड़े-बड़े काम नहीं हो सकते। महीनों बीत जाते हैं, बात करने का मौक़ा ही नहीं मिलता; और जब मिलता है तब दो-एक बात से अधिक नहीं हो सकती। सैयद सलाबत ख़ाँ उसी का नौकर है; उसी की मारफ़त हम अपना काम निकालने की कोशिश कर रहे हैं। ख़ान दौरान के यहाँ यद्यपि उसकी ख़ूब चलती है तथापि बात करने का मौक़ा कम मिलने से वह भी हमारी यथोचित सहायता अभी तक नहीं कर सका। इस कारण आज तक जो कुछ काम हुआ है सब काग़ज़ के टुकड़ों पर हुआ है। इसी से और भी देरी हो रही है। पर क्या किया जाय, लाचारी है। यद्यपि इस बात का बार-बार हमसे वादा किया गया है कि काम हमारा हो जायगा। यहाँ तक कि ख़ान दौरान ने ख़ुद कई दफ़े इस बात का वादा लिखकर भी और मुँह से भी, किया है। पर एक दिन एक बड़ी ही आश्चर्यजनक बात हुई। मामूली तौर पर एक बार ख़्वाजा सरहाद ख़ान दौरान को सलाम करने गया। मौक़ा पाकर उसने हमारी दरख़्वास्त की याद उसे दिलाई। इस पर ख़ान दौरान ने एक तअज्जुब से भरी हुई नज़र से सर-

हाद की तरफ़ देखा और कहा—"कौन दरख़्वास्त ? क्या मैंने तुम्हारा मामला तै नहीं कर दिया ?" इसका जवाब सरहाद ने दिया; परन्तु विशेष बातचीत का मौक़ा दिये बिना ही वह पालकी पर सवार होकर चल दिया। इस आश्चर्य्यमयी विस्मृति से घबराकर हम लोगों ने बड़ी कारुणिकता दिखलाते हुए सलावत ख़ाँ से कहा कि जहाँ यह दशा है वहाँ कामयाबी की आशा छोड़ देनी चाहिए। इतने दिनों तक हम लोगों ने सब्र किया और इतना ख़र्च उठाया। अतएव हमको, अब इस तरह का जवाब देना, बड़े अचरज और अफ़सोस की बात है। सलावत ख़ाँ ने कहा कि जैसे-जैसे आपका तजरुबा बढ़ेगा वैसे ही वैसे आपको मालूम हो जायगा कि ख़ान दौरान में भूल जाने का बहुत बड़ा ऐब है। यह ऐब उसमें स्वाभाविक है, बनावटी नहीं। उसने फिर भी वही बात कही कि हमारा काम होने में अब देर नहीं; हमको हरगिज़ नाउम्मेद न होना चाहिए। इससे हमको बहुत कम सन्तोष हुआ। सन्तोष क्या, यह कहना चाहिए कि हमारी नाउम्मेदी बढ़ गई। क्योंकि हमने इसके बाद ही सुना कि ख़ान दौरान के अफ़सरों ने उसे यह सलाह दी है कि हमारे बारे में बादशाह से कुछ कहना उसका काम नहीं। उन्होंने उसे सुझाया कि इस मामले को वह वज़ीर पर छोड़ दे। वज़ीर को हम लोगों के लिए जो कुछ उचित समझ पड़े सो वह बादशाह से कहे। हमने यह इरादा कर रक्खा था कि यदि ख़ान दौरान की

मारफ़त हमारी दरख़्वास्तें मंज़ूर हो जायँगी तो हम वज़ीर आज़म को उसके ख़िलाफ़ कुछ कहने या करने का मौक़ा न देंगे। उसकी स्वल्प पूजा ही से यह काम हो जाता। इन सब बातों को ख़ान दौरान पर ज़ाहिर करने के लिए हम लोगों ने लाख कोशिशें कीं; परन्तु क्या किया जाय। उससे बात करने का हमें मौक़ा ही नहीं मिला।

वज़ीर की इच्छा के विरुद्ध कल बादशाह शिकार खेलने गया। बाहर जाने के लिए इस समय किसी का मन न था; परन्तु बादशाह ने इसका ख़याल न करके अपनी मरज़ी के मुताबिक़ काम किया। उसके साथ सब अमीरों को भी जाना पड़ा। जहाँ जाना है वह जगह यहाँ से १८ कोस है। भगवान् जाने इसमें क्या भेद है; वहीं रहना है, या और कहीं आगे जाना है। शिकार खेलना है, या कुछ और ही मतलब है। कल या परसों, हम लोगों को भी उसके पीछे दौड़ना पड़ेगा। एडवर्ड स्टिफ़्यन्सन और फ़िलिप्स को हम यहीं छोड़ जायँगे। वही हमारी महामान्य कम्पनी के माल-असबाब की ख़बरदारी रक्खेंगे।

देहली, २० एप्रिल। जिस समय बादशाही पड़ाव देहली से १४ कोस पर था ख़ान दौरान और मुहम्मद आमिन ख़ाँ के आदमियों में झगड़ा हो गया। बात यहाँ तक बढ़ी कि पूरा युद्ध होने लगा। दो घण्टे तक तलवार और बन्दूक़ चलीं। बम के गोले तक छूटे। बादशाह ने बहुत मना किया;

परन्तु किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। जब कोई दो सौ आदमी काम आ चुके तब लड़ाई बन्द हुई। बादशाह ने ख़ान दौरान और आमिल ख़ाँ, दोनों पर अप्रसन्नता प्रकट की और इस गुस्ताख़ी के लिए उनको बहुत लानत-मलामत दी। परन्तु, अब, उसने इन दोनों को माफ़ सा कर दिया है; फिर वह इनके साथ पहले की तरह बात-चीत करने लगा है।

देहली से भेजी हुई अँगरेज़ी एलचियों की सब चिट्ठियों का खुलासा देने से लेख बहुत बढ़ जायगा, क्योंकि उन लोगों को कोई दो वर्ष वहाँ पड़ा रहना पड़ा। इसलिए हम उनकी दरख़्वास्तों का परिणाम संक्षेप से कहे देते हैं। जब ये लोग देहली में पड़े-पड़े, इस तरह, ख़ान दौरान के दरवाज़े की मिट्टी खोद रहे थे तब वहाँ यह ख़बर पहुँची कि सूरत के सूबेदार के अन्याय से तङ्ग आकर अँगरेज़ लोग बम्बई चले गये; सूरत उन्होंने छोड़ दिया। इस ख़बर ने शाही दरबार में खलबली डाल दी; सब लोग घबरा उठे कि पहले की तरह अँगरेज़ लोग मुग़ल-जहाज़ों पर कहीं फिर न हमला करने लगें। इस डर से जिन बातों के लिए अँगरेज़ों की दरख़्वास्त बादशाह के सामने पेश थी वे, एक-एक करके, मंजूर कर ली गईं। एक फ़रमान फ़ौरन तैयार किया गया। बादशाही मुहर हो जाने पर वह कलकत्ते से आये हुए साहब लोगों के हवाले किया गया। इसे लेकर वे लोग देहली से बिदा हुए। उनकी बिदाई का वृत्तान्त उन्हीं के मुँह से सुनिए—

देहली, ७ जून १७१७। २३ मई को जान सरमन ने एक घोड़ा और एक क़ीमती कड़ा पाया। इन चीज़ों को बादशाह सलामत ने ख़ुद दिया। ३० मई को ख़ान दौरान ने हम लोगों को बिदाई के लिए बुला भेजा। हम लोग बादशाही दरबार में हाज़िर हुए। फ़रमान मिला। उसके साथ ही जान सरमन ने एक सरोपा और कलगी पाई। सरहाद और एडवर्ड रिटफयन्सस को सरोपा मिला। हमारे साथ में जो और लोग थे उनको भी एक-एक सरोपा मिला। हम लोगों को हुक्म हुआ कि एक-एक करके बादशाह के सामने हों, और, क़ायदे के मुताबिक़ कोरनिश करके, धीरे से, दीवाने आम के बाहर हो जायँ। हमने ऐसा ही किया। परन्तु जब डाक्टर हैमिल्टन की बारी आई तब उनसे यह कहा गया कि जो अबा उनको दिया गया है वह बिदाई का चिह्न नहीं है; किन्तु बादशाह की कृपा-विशेष का चिह्न है। अतएव उनको अपनी जगह पर फिर खड़ा होने का हुक्म हुआ। वे खड़े ही थे कि बादशाह तख़्त से उठकर चला गया। इस पर हम लोगों को बड़ा तअज्जुब हुआ। इस बात की हमको पहले से ज़रा भी ख़बर न थी। न ख़ान दौरान ही ने हमसे, इस विषय में, कुछ कहा और न किसी और ही अमीर या अफ़सर ने। एक वर्ष हुआ जब डाक्टर हैमिल्टन ने बादशाह की चिकित्सा की थी। तब से आज तक उसको एक दिन भी बादशाह या और किसी ने याद नहीं किया। उसके, इस

तरह रोक लिये जाने पर, हम लोगों को सख़्त रंज हुआ। रंज इसलिए और भी अधिक हुआ कि वह देहली में रहना नहीं चाहता था। उसने निश्चय कर लिया था कि चाहे उसको जितना वेतन दिया जाय और चाहे उसकी जितनी ख़ातिर हो वह बादशाह की नौकरी हरगिज़ न करेगा। यदि वह बलपूर्वक रक्खा जायगा तो बस भर निकल जाने की कोशिश करेगा और, इस तरह भगने का जो नतीजा होगा है वह किसी से छिपा नहीं है।

बादशाह के क्रोधी स्वभाव से हमारे मानमूर्ति मालिकों को कोई हानि न पहुँचे, इसलिए हम लोगों ने इस मामले में जल्दी करना और बिना हुक्म हैमिल्टन को भगा लाना उचित नहीं समझा। ख़ान दौरान से हम लोगों ने प्रार्थना की कि वह हैमिल्टन की रिहाई करा दे। परन्तु उसने साफ़ जवाब दिया। ख़ैर किसी तरह हमने सैयद सलाबत ख़ाँ को राज़ी किया। उसने ख़ान दौरान से बहुत कुछ कहा-सुना। तब उसने यह सलाह दी कि हम लोग वज़ीर से मिलें। यदि वह, किसी तरह, बीच में पड़कर हैमिल्टन की सिफ़ारिश बादशाह से करे तो ख़ान दौरान भी उसकी सिफ़ारिश का अनुमोदन करेगा।

६ तारीख़ को हम लोग वज़ीर से मिले और डाक्टर हैमिल्टन का प्रार्थनापत्र देकर इस विषय में उससे बातचीत की। हमने उससे कहा, यह डाक्टर न तो यहाँ की भाषा जानता है; न यहाँ की दवाइयों के नाम जानता है; न इसने

यहाँ का वैद्यक-शास्त्र पढ़ा है; न इसके पास अँगरेज़ी दवाइयाँ ही काफ़ी हैं। फिर, अपने बाल-बच्चों से हज़ारों कोस दूर रहकर यह कभी प्रसन्नचित्त नहीं रह सकेगा। और उदास और असन्तुष्ट आदमी से कोई काम अच्छी तरह नहीं हो सकता। पुत्र-कलत्र के वियोग से इसे दुःसह दुःख होगा। दुःखित मनुष्य कहाँ तक अच्छी चिकित्सा करेगा यह आप स्वयं जान सकते हैं। उसका चित्त तो बाल-बच्चों के पास रहेगा, शरीर अलबत्ते यहाँ पड़ा रहेगा। अतएव बादशाह की ख़िदमत लायक़ वह हरगिज़ न होगा। इसलिए बादशाह सलामत से वह दया की भिक्षा माँगता है और अत्यन्त नम्रता से विनय करता है कि वह हम लोगों के साथ वापस भेज दिया जाय। हमने वज़ीर से अपनी तरफ़ से कहा कि बादशाह ने इस डाक्टर पर जो कृपा की है वह हम लोगों के लिए गर्व की बात है; उससे हमारी बहुत कुछ इज़्ज़त हुई है। पर इसकी तकलीफ़ों का ख़याल करके इस पर रहम आता है; और यही कारण है, जो हम लोग लाचार होकर आपके पास प्रार्थना करने आये हैं। अब आप दया करके बादशाह सलामत को समझा-कर इसकी रिहाई करा दीजिए। हम लोग आपका यह एहसान आमरण न भूलेंगे। वज़ीर बड़ा ही नेक और रहम-दिल आदमी है। उसने तत्काल वादा किया कि जहाँ तक उससे हो सकेगा वह हमारी इच्छा को पूर्ण कराने के लिए सिफ़ारिश करेगा। उसने यह भी कहा कि यदि डाक्टर का

यह हाल है तो उसे विश्वास है कि बादशाह प्रसन्नतापूर्वक उसे जाने देगा। वज़ीर की आज्ञा से हमने बादशाह के नाम एक वैसी ही दरख़्वास्त लिखाई जैसी हमने वज़ीर के लिए लिखाई थी। लिखाकर हमने उसे वज़ीर को दिया। वज़ीर अपनी बात पर क़ायम रहा; उसने अपना वादा पूरा किया। हमारी दरख़्वास्त के साथ उसने बादशाह को एक चिट्ठी भेजी। उसमें डाक्टर हैमिल्टन की तकलीफ़ों का उसने बहुत ही करुणा-जनक वर्णन लिखा, और सिफ़ारिश की कि ऐसी दशा में उसको जाने देना ही अच्छा है। बादशाह ने उसका जवाब ६ तारीख़ को, इस प्रकार, दिया—"यह डाक्टर मेरी बीमारी का सब हाल जानता है; अपने काम में भी होशियार है। इसलिए मैं इसे अपने यहाँ रख लेता और जो कुछ यह माँगता मैं देता। परन्तु यह देखकर कि किसी तरह यह यहाँ रहने को राज़ी नहीं, मैं इसे रोकना नहीं चाहता। पर मैं एक शर्त करता हूँ। वह यह कि योरप जाकर, वहाँ अपनी स्त्री और बाल-बच्चों से मिलकर, और जो दवाइयाँ यहाँ नहीं मिलतीं उनको लेकर इसे, एक बार, फिर देहली आना पड़ेगा। यदि यह शर्त इसे मंजूर हो तो इसे चले जाने दो।" हमको आशा है कि ईश्वर की कृपा से हैमिल्टन की विपदा के बादल, जो उस पर उमड़ आये थे, अब जहाँ के तहाँ उड़ गये।

यहाँ पर हम इस निबन्ध की समाप्ति करते हैं। अँगरेज़ी एलची ख़ुश-ख़ुश कलकत्ते लौट आये। उन लोगों का देहली

जाना और हैमिल्टन के हाथ से बादशाह का आराम होना चिरकाल तक कलकत्ते के अँगरेज़ों को नहीं भूला। कलकत्ते लौट आने के थोड़े ही दिन बाद हैमिल्टन की मृत्यु हुई। ख़बर देहली भेजी गई, परन्तु फ़र्रुख़सियर को इस पर विश्वास नहीं आया। उसने इसे बनावट समझा। इसलिए उसने एक अमीर को उसकी तहक़ीक़ात के लिए कलकत्ते भेजा। वहाँ जाकर उसने हैमिल्टन के समाधिस्तम्भ को देखकर इस समाचार के सत्य होने की सूचना बादशाह को दी। इस डाक्टर की समाधि अब तक कलकत्ते में विद्यमान है। समाधि के ऊपर जो पत्थर गड़ा है उस पर अँगरेज़ी और फ़ारसी, दोनों भाषाओं, में एक लेख उत्कीर्ण है। उसमें लिखा है कि यह डाक्टर अँगरेज़ी कम्पनी की दूत-मण्डली के साथ देहली गया; बादशाह को नीरोग करके संसार भर में इसने अपना नाम किया और अनन्त कठिनाइयों को झेलकर, बादशाह से अपनी जन्मभूमि को लौट जाने की अनुमति पाई। परन्तु परमात्मा के अनुल्लङ्घनीय आदेश से ४ दिसम्बर १७१७ को इसने यहाँ शरीर छोड़ दिया।

[जनवरी, फ़रवरी, मार्च १९०८

७—पुराना सती-संवाद

फ्रांस का रहनेवाला डाक्टर बर्नियर नामक एक विद्वान् औरङ्गज़ेब के राज्य-काल में यहाँ सैर करने आया था। वह पैलेस्टाइन, सीरिया, टर्की, ईजिप्ट, फ़ारिस और अरब होता हुआ, १६५६ ईसवी में, इस देश के सूरत बन्दर में पहुँचा। यहाँ आकर वह कोई १२ वर्ष देहली में रहा। इस बीच में उसने प्रायः सारे हिन्दुस्तान में भ्रमण किया। उस समय देहली में दानिशमन्द ख़ाँ नामक सूबेदार था। वह औरङ्गज़ेब का वैदेशिक-विभाग-सम्बन्धी मन्त्री भी था। यह सूबेदार फ़ारिस का निवासी था और बड़ा ही विद्या-व्यसनी था। औरङ्गज़ेब उसका बड़ा मान करता था। उसी के आश्रय में बर्नियर १२ वर्ष तक यहाँ रहा। उसने यहाँ फ़ारसी का भी अभ्यास किया था। दानिशमन्द ख़ाँ को वह पाश्चात्य शरीर-शास्त्र (Anatomy) और तत्त्व-विद्या सिखलाता था। देहली के अमीरों में उसका बड़ा आदर था। बादशाह के यहाँ तक वह चिकित्सा के लिए बुलाया जाता था। उसको ३००) रुपये मासिक वेतन दानिशमन्द ख़ाँ के यहाँ से मिलता था; परन्तु, उस समय, उसने इस वेतन को बहुत बड़ा वेतन माना था। बर्नियर ने औरङ्गज़ेब की निर्दयता, राज्य-लोलुपता, भेद-भक्ति और दम्भ-लीला का आँखों-देखा वर्णन लिखा है।

इसका इसके भाइयों के साथ युद्ध और क्रूरता के बर्ताव का भी बहुत ही सजीव चित्र खींचा है। बादशाह के दरबार का, उसके अधिकारियों का, उसकी सेना का, उसकी चढ़ाइयों का, हिन्दू और मुसल्मानों के धार्म्मिक विचारों का, उस समय की सामाजिक अवस्था का भी बहुत ही अच्छा वृत्तान्त बर्नियर ने लिखा है। ये सब बातें, समय-समय पर, स्वदेश को भेजे हुए डाक्टर साहब के पत्रों के साथ फ्रेञ्च भाषा में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई हैं। उनका अँगरेज़ी अनुवाद भी छप गया है। इस पुस्तक को पढ़ने से औरङ्गज़ेब के समय का बहुत कुछ सच्चा हाल मालूम होता है। पुस्तक बहुत ही मनोरञ्जक है और अनेक ऐतिहासिक बातों से परिपूर्ण है। उसमें बर्नियर ने, सत्रहवीं शताब्दी में, सती होनेवाली स्त्रियों का प्रत्यक्ष देखा हुआ जो हाल लिखा है उसे, हम, यहाँ पर, उसी के मुख से सुनाते हैं—

"मेरे आक़ा, दानिशमन्द ख़ाँ, के यहाँ वेणीदास नामक एक कारकुन था। दो वर्ष तक बीमार रहकर वह मर गया। उसके शरीर के साथ उसकी स्त्री ने सती हो जाना चाहा। जब यह समाचार दानिशमन्द ख़ाँ को मिला तब उसने कई आदमियों को वेणीदास की विधवा के पास समझाने भेजा। परन्तु उसने किसी का कहना न माना; अपने छोटे-छोटे दो बच्चों को छोड़कर जल जाना ही उसने अच्छा समझा। इस पर ख़ाँ ने मुझे भेजा। मैं गया। वह विधवा अपने मृत पति के पैरों के पास बैठी थी; बाल बिखरे हुए थे; चेहरा ज़र्द था।

पास ही पाँच-सात ब्राह्मण ताली बजा रहे थे और ज़ोर-ज़ोर से कुछ गा रहे थे। विधवा के चेहरे पर शोक अथवा सन्ताप के कोई विशेष चिह्न न थे। मैंने कहा, मुझे दानिशमन्द ख़ाँ ने भेजा है और कहा है कि तुमको अपने लड़कों की ओर देखकर जीती रहना चाहिए। यदि तुम दानिशमन्द ख़ाँ का कहना मानोगी तो तुम्हारे दोनों लड़कों को पेंशन मिल जायगी और तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुमको सती होने के लिए कोई मजबूर न कर सकेगा। तुमको अपने पति के प्रेम से अपने छोटे-छोटे बच्चों पर अधिक प्रेम होना चाहिए। ऐसी दशा में सती न होना तुम्हारे लिए कोई कलङ्क की बात नहीं। इस प्रकार जहाँ तक मुझसे बना, मैंने उसे समझाया; परन्तु उसने मेरी एक न मानी। उसने कहा कि यदि उसे कोई सती होने से रोकेगा तो वह दीवार पर सिर फोड़कर अपना भेजा बाहर निकाल देगी। यह सुनकर मुझे बड़ा क्रोध आया। मैंने कहा, अच्छी बात है; सिर फोड़ो। परन्तु, पाषाण-हृदया माँ! सती होने के पहले तू इन दोनों बच्चों की गरदन काटकर अपनी चिता पर रख ले। क्योंकि मैं अभी दानिशमन्द ख़ाँ के पास जाकर इनकी पेंशन का हुक्म मनसूख़ करा देता हूँ। ऐसा होने से, तेरे जल जाने पर ये अवश्य ही भूखों मर जायँगे। क्रोध में आकर, ऊँचे स्वर से, जब मैं यह कह चुका तब मैंने देखा कि उस विधवा का सिर सहसा उसके घुटनों पर गिर गया।

धीरे-धीरे उसके पास के ब्राह्मण और वृद्ध स्त्रियों का समूह बाहर चला गया। मेरी इस धमकी का अच्छा प्रभाव हुआ। मैं वहाँ से चला आया। कुछ देर बाद मैंने सुना कि उसने सती होने की इच्छा छोड़ दी और उसके पति का मृतक शरीर अकेला ही अग्निसात् कर दिया गया।"

"मैंने चार-पाँच दफ़े स्त्रियों को जीता जलते देखा है। अह! क्या ही भयङ्कर काण्ड है! मुझे यद्यपि बहुत बार यह अमानुषिक कृत्य देखने का मौक़ा मिला है तथापि मैं उसे अधिक नहीं देख सका। उसका स्मरण होते ही मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"

"एक बार मैं अहमदाबाद से आगरे को आ रहा था। राह में, एक दिन, एक पेड़ के नीचे जब मैं दोपहर को ठहरा था, मैंने सुना कि पास ही एक स्त्री सती होने को थी। मैं उसे देखने गया। मैंने देखा कि एक सूखे तालाब में एक गढ़ा खोदा गया है; उसमें लकड़ियाँ भरी हुई हैं; उन पर एक मृतक शरीर रक्खा है; उसके पास एक स्त्री बैठी है; चार-पाँच ब्राह्मण उसमें चारों ओर से आग लगा रहे हैं; पाँच प्रौढ़ा स्त्रियाँ अच्छे वस्त्र पहने, एक दूसरे को हाथ से पकड़े हुए, गाती और नाचती हुई, चिता की प्रदक्षिणा कर रही हैं; और अनेक स्त्री-पुरुष तमाशा देख रहे हैं। चिता पर खूब घी और तेल डाला गया था। मेरे पहुँचने पर थोड़ी देर में वह चिता जली और उससे लपटें निकलने लगीं। उस स्त्री के वस्त्रों में

आग लग गई; परन्तु मैंने उसके चेहरे पर भय अथवा दुःख के कोई चिह्न न देखे। मैंने समझा, काम हो चुका। परन्तु यह मेरी भूल थी। मेरे आश्चर्य की सीमा तब न रही जब मैंने देखा कि उन पाँच स्त्रियों में से भी एक के वस्त्र में आग लगी और वह सिर के बल चिता पर गिर गई। दूसरी ने भी ऐसा ही किया। तब तक शेष तीन, पूर्ववत्, गाती, नाचती और चिता की प्रदक्षिणा करती रहीं। यथा-समय, बारी-बारी से, वे भी आग में कूदीं और थोड़ी ही देर में ६ जीवित स्त्रियाँ और एक मृत पुरुष जलकर राख ही गये। मैंने पीछे से सुना कि वे पाँचों स्त्रियाँ दासियाँ थीं। पति के जीने की जब आशा न रही तब पत्नी ने उसके साथ सती होने का निश्चय किया। इस निश्चय को सुनकर उन दासियों ने भी, प्रेमातिरेक के कारण, अपनी स्वामिनी के साथ ही जल जाने का प्रण किया।"

"एक और अद्भुत घटना सुनिए। एक युवती स्त्री एक युवा मुसल्मान से अनुचित प्रेम रखती थी। वह मुसल्मान दरज़ी का काम करता था और तँबूरा भी अच्छा बजाता था। इस स्त्री ने अपने प्रेम-पात्र की सलाह से अपने पति को विष दे दिया। देकर वह उसके पास तुरन्त पहुँची और उससे कहा कि अब भाग चलने में विलम्ब न करना चाहिए। क्योंकि विलम्ब करने से, लोक-लज्जा के भय से, मुझे सती हो जाना पड़ेगा। यह बात उसके प्रेमी ने न मानी; उसने अपना वादा पूरा न किया। इस पर उस स्त्री ने ज़रा भी

क्रोध अथवा भय न प्रकट किया। वह तत्काल अपने घर लौट आई। अपने पति के मरने का समाचार उसने अपने सम्बन्धियों को दिया और उसके साथ सती हो जाना भी निश्चय किया। इस पिछली बात को सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए। सब प्रबन्ध कर दिया गया। चिता तैयार हुई। उस पर उसके मृतक पति का शरीर रक्खा गया। एक ओर उसमें आग भी लगा दी गई। इतना हो चुकने पर वह स्त्री चिता की प्रदक्षिणा करने लगी और अपने निकट सम्बन्धियों से मिलने-भेंटने लगी। इस समय वह दरज़ी भी तँबूरा लिये हुए वहाँ उपस्थित था। वह स्त्री उसके भी पास पहुँची और उससे अन्तिम भेंट करने के बहाने उससे लिपट गई। लिपटकर, बलपूर्वक, वह उसे चिता तक खींच लाई और उसको लेकर जलती हुई चिता में गिर गई!"

"मैंने एक बार, लाहौर में, एक बहुत ही रूपवती और कम उम्र की विधवा को जलाया जाते देखा है। उसकी उम्र १२ वर्ष से अधिक न होगी। वह बेचारी जब उस भयङ्कर चिता के पास पहुँची तब जीती होकर भी मुर्दों के समान हो गई। उसकी विकलता का वर्णन नहीं हो सकता। वह थर-थर काँपती थी और बड़े ही करुण-स्वर से रोती थी। एक बुढ़िया उसे अपने हाथों से थाँमे थी और चार ब्राह्मण उसकी मदद कर रहे थे। इस प्रकार उन पाँचों ने उसे ज़बरदस्ती चिता पर ले जाकर बिठाया। वहाँ उन्होंने उसके हाथ और पैर दृढ़ता से

बाँध दिये कि कहीं वह भाग न जाय। इस प्रकार, इस निःसहाय और विवश स्थिति में वह जीती जला दी गई!"

"परन्तु कोई-कोई स्त्रियाँ बड़ी ही दृढ़ होती हैं। वे जलने से ज़रा भी नहीं डरतीं। जब मैं सूरत से फ़ारिस को जा रहा था तब मैंने एक ऐसी ही विधवा को सती होते देखा। मेरे साथ, उस समय, कई अँगरेज़ और डच थे। हमने देखा कि वह स्त्री बड़े धैर्य्य और बड़ी वीरता से उस अमानवी लीला के लिए प्रस्तुत थी। उसकी उम्र कोई ३५ वर्ष की होगी। भय उसको छू तक न गया था; वह बिलकुल निडर सी बातचीत करती थी। हम लोगों की ओर वह बड़ी बेपरवाही से देख रही थी। घबराहट का नाम तक उसके मुख पर न था। वह अपनी चिता की लकड़ियों को ऐसे सुधार रही थी जैसे कोई फूलों से सेज सुधारता हो। वह आनन्दपूर्वक चिता पर बैठी; अपने पति का सिर उसने बड़े प्रेम से अपनी गोद में लिया; और अपने ही हाथ से एक जलती हुई मशाल उसने चिता में लगा दी! इस घटना को देखकर मेरी जो दशा हुई उसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। वह अब तक मेरी आँखों के सामने है।"

"परन्तु ऐसी अनेक घटनायें मैंने देखी हैं जिनमें स्त्रियाँ ज़बरदस्ती जला दी गई हैं। चिता को देखकर ही कितनी अबलायें काँपने लगती हैं; परन्तु निष्ठुर और निर्दयी तमाशबीन उनको जलने के लिए उत्तेजित करते हैं यहाँ तक कि वे उनको बलपूर्वक आग में झोंक देते हैं। मैंने एक बार

आँखों से देखा कि एक स्त्री जलती हुई चिता से पीछे हट आई। परन्तु वह अपनी इच्छा के विरुद्ध चिता पर ढकेल दी गई। एक और ऐसी ही अभागिनी, चिता पर आग को अपनी ओर बढ़ती देख, भागने लगी। परन्तु उसके आस-पास जो हत्यारे इकट्ठे थे उन्होंने बाँसों से उसकी ख़बर ली! और वह वहाँ से हिलने न पाई।"

"कभी-कभी स्त्रियाँ, सती होने के डर से, पति की मृत्यु होने पर भाग जाती हैं। कभी-कभी वे अन्य जातिवालों के द्वारा छीन तक ली जाती हैं। समुद्र के किनारे, जहाँ पोर्चुगीज़ों का विशेष प्रभुत्व है वहाँ, ये लोग सती होने के लिए प्रस्तुत स्त्रियों को बहुधा बचा लेते हैं।"

१६९० ईसवी में कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम में चैनक नामक एक अँगरेज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी का एजंट था। एक बार वह एक स्त्री को सती होते देखने गया। उसके साथ बहुत से सिपाही भी थे। वहाँ उस स्त्री के रूप पर वह मोहित हो गया और बलपूर्वक उसे उसने छीन लिया। छीनकर उसे उसने अपने यहाँ रक्खा। उससे सन्तति भी हुई। बहुत दिनों तक वे दोनों प्रेम-पूर्वक रहे। उसके मरने पर चैनक साहब ने उसकी बहुत अच्छी समाधि बनाई। यह घटना टालबाय ह्वीलर साहब ने अपनी एक पुस्तक में लिखी है।

[फ़रवरी १९०४

८—लोम-हर्षण शारीरिक दण्ड

१८५७ ईसवी के पहले, इस देश में, ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रभुत्व था। उस समय, यहाँ, कहीं-कहीं, बड़े ही भयानक और हृदयविदारी दण्ड दिये जाते थे। अपराधियों को, और यदा-कदा निरपराधियों को भी, शरीर-दुर्गति स्वदेशी राज्यों में तो होती ही थी; परन्तु, कहीं-कहीं, अँगरेज़ी—अर्थात् ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधीन—राज्य में भी होती थी। मदरास-हाते में शारीरिक दण्ड की भीषणता और प्रदेशों की अपेक्षा बहुत ही अधिक थी। इसलिए गवर्नमेंट ने, १८५४ ईसवी में, इसकी जाँच करने के लिए एक कमीशन नियत किया था। इस कमीशन ने अपनी जाँच का फल एक रिपोर्ट में सन्निविष्ट करके, १५ एप्रिल १८५५ को, उसे गवर्नमेंट को भेजा। इस रिपोर्ट में जिस प्रकार के घोर शारीरिक दण्डों का वर्णन है उस वर्णन हा को सुनकर, औरों का तो बात ही नहीं, नादिरशाह और चीतू पिण्डारी के समान पाषाणहृदय मनुष्यों का भी कलेजा दहल उठेगा। इस रिपोर्ट में वर्णन किये गये अमानुषिक दण्डों की नामावली देकर हम पाठकों के कोमल हृदय को पीड़ा नहीं पहुँचाना चाहते। हम, यहाँ पर, उनसे कम यातना-जनक कुछ शारीरिक दण्डों का उल्लेख करेंगे।

मदरास में ट्रावनकोर एक प्रसिद्ध राज्य है। वहाँ इस समय सभ्यता का बड़ा ज़ोरो-शोर है। विद्या की भी वहाँ ख़ूब उन्नति है। परन्तु, किसी समय, वहाँ मनुष्यों को बड़े ही कठोर दण्ड दिये जाते थे। १८४८ ईसवी में, एक प्रख्यात अँगरेज़ ने, वहाँ के शारीरिक दण्डों की जो सूची प्रकाशित की थी उसको देखने से विदित होता है कि, उस समय, ट्रावनकोर में नीचे लिखे अनुसार दण्ड दिये जाते थे।

(१) हाथ पीछे रस्सी से बाँध दिये जाते थे और बाँधकर खींचे जाते थे। खिंचाव धीरे-धीरे बढ़ाया जाता था। यहाँ तक कि हाथों का उखड़ना ही भर बाकी रहता था। इधर, इस तरह, हाथ खींचे जाते थे; उधर गर्दन झुकाकर उस पर कोई बहुत बड़ी वज़नी चीज़ रख दी जाती थी; या बाँधकर लटका दी जाती थी। (२) शरीर के अवयव—हाथ, पैर, कान, अँगुलियाँ आदि—मरोड़े जाते थे। इस मरोड़ और खींचाखांच में, कभी-कभी, हड्डियाँ टूट जाती थीं; या अपनी जगह से हट जाती थीं। (३) दो लकड़ियाँ ली जाती थीं। वे दोनों, एक ओर, ढीली बाँध दी जाती थीं। उनके बीच में अँगुलियाँ रखकर दबाई जाती थीं। इस दबाव की सीमा न थी। दबानेवाला यथेच्छ बल लगाता था। इस दण्ड में चिपटी होकर अँगुलियों से ख़ून बह निकलना साधारण बात थी। (४) काँटेदार पतली छड़ियों से पिटाई होती थी। (५) दो स्त्रियों के लम्बे केश खोलकर, उनके छोर

एक दूसरे से बाँध दिये जाते थे; और उन बँधे हुए केशों के बीच से एक भारी पत्थर या और कोई वज़नी चीज़ लटका दी जाती थी। (६) लोहे की एक लम्बी छड़ में, एक ओर, दो-चार छल्ले रहते थे। हर एक छल्ले में एक पैर डाल दिया जाता था। तब उस छड़ का दूसरा किनारा, किसी दीवार या लकड़ी के कुन्दे में, छेद करके, उसके भीतर से खींचा जाता था। खींचने में अन्धाधुन्ध बल लगाया जाता था। इस तरह, उस छड़ का छल्लावाला छोर दीवार या लकड़ी के कुन्दे के पास आ जाता था और सबके पैर इकट्ठे होकर कटने लगते थे। (७) घण्टों हाथों के बल, किसी पेड़ या कड़ी से आदमी लटकाये जाते थे। (८) लटकते हुए के नीचे आग जलाई जाती थी और आग में अत्यन्त कड़ुई लाल मिर्च डालकर उसके असहनीय धुवें से आँख, नाक और गले को उत्कट पीड़ा पहुँचाई जाती थी। (९) एक विशेष प्रकार की लकड़ी के भीतर पैर डालकर आदमी काठ मार दिये जाते थे। (१०) कोठरी में डालकर भीतर ख़ूब धुवाँ किया जाता था; और बाहर किवाड़े बन्द कर दिये जाते थे। (११) लाल गरम चिमटे या सँड़सी से गुप्ताङ्ग दागे जाते थे। (१२) दस-पाँच गोबरैले (कीड़े), नारियल के आधे छिलके में रखकर, नाभि पर बाँध दिये जाते थे। वे मांस काटकर धीरे-धीरे आँतों में प्रवेश करने की चेष्टा करते थे; और अपराधी को मरणान्त वेदना

पहुँचाते थे। (१३) हाथ में, कलाई से लेकर गाँठ तक, नमक और रेत देर तक मला जाता था। फिर वहाँ, नारियल की सूखी पत्ती के डण्ठुर खूब कड़े करके बाँधे जाते थे। कुछ देर हो जाने पर, वे डण्ठुर, एक-एक करके, खींचे जाते थे। खींचने से मांस कटता चला आता था और नमक और रेत के संयोग से अपराधी को असह्य यन्त्रणा होती थी।

किसी बात को कबूल कराने, मालगुज़ारी अथवा लगान वसूल करने, और रिश्वत पाने के लिए ऐसी अमानुषी दण्ड-विधि का प्रयोग होता था। यह भारत के अत्यन्त दक्षिण में एक देशी राज्य की बात हुई। अब भारत के उत्तर कम्पनी बहादुर के राज्य की भी लीला सुन लीजिए।

१८५४ ईसवी में हेनरी ब्रेरेटन साहब लुधियाने में डेप्युटी कमिश्नर थे। उस समय आपको नौकरी करते १८ वर्ष हो गये थे। उनके किये हुए न्याय और फ़ैसले के ख़िलाफ़ पञ्जाब के चीफ़ कमिश्नर, सर जान लारन्स, को कई आदमियों ने अरज़ियाँ दीं। चीफ़ कमिश्नर ने इन दरख़्वास्तों को सतलज के उस पारवाली देशी रियासतों के सुपरिंटेंडेंट, बार्नेस साहब, के पास तहक़ीक़ात के लिए, भेजा। बार्नेस साहब ने, मौक़े पर जाकर, अच्छी तरह तहक़ीक़ात की; और इस मामले की एक लम्बी रिपोर्ट भेजी। इसी रिपोर्ट से हम कुछ बातें बार्नेस साहब ही के शब्दों में, भाषान्तर रूप, नीचे देते हैं—

"डेप्युटी कमिश्नर ब्रेरेटन साहब के साथ मैंने लुधियाने का जेल देखा। वह क़ैदियों से भरा हुआ था। लोगों ने मुझे घेर लिया और उन पर जो अन्याय और ज़बरदस्ती हुई थी उसकी शिकायतें पेश कीं। मैंने सुना कि ब्रेरेटन साहब ने जासूस रक्खे थे। उनको गवर्नमेंट से तनख़्वाह मिलती थी। मुसाहब ख़ाँ तहसीलदार और उसके भाई फ़तेहजङ्ग परवानेनवीस के ख़िलाफ़ अनेक शिकायतें हुईं। एक क़ैदी ने कहीं कह दिया कि सरदार चिम्मनसिंह के यहाँ चोरी का माल है। यह सरदार कुनैच का जागीरदार है और इज़्ज़तदार आदमी है। ब्रेरेटन साहब की आज्ञा से फ़तेहजङ्ग पुलिस लेकर सरदार के घर पहुँचा। सरदार की उसने बेइज़्ज़ती की। डेप्युटी कमिश्नर भी पीछे से वहाँ आये। चिम्मनसिंह का घर गिरा दिया गया; फ़र्श खोद डाला गया; और सारा असबाब लुधियाने को भेज दिया गया। इसी समय वहाँ के आठ इज़्ज़तदार ज़मींदार भी पकड़े गये। उनके बेड़ियाँ डाल दी गईं और वे फ़तेहजङ्ग के सिपुर्द हुए। तीन महीने तक वे क़ैद रहे और उनकी दुर्गति की गई। मेरी समझ में वे बिलकुल निरपराध हैं। वे फ़तेहजङ्ग के निज के घर में क़ैद रक्खे गये थे। उन पर जो बीती उसका वर्णन वे नहीं कर सकते। उनके सिर के बाल उनके पैर की बेड़ियों से बाँध दिये गये थे। उनकी कुहनियों में मेख़ें ठोक दी गई थीं; और दूसरे मर्म्म-स्थलों की भी यही दशा की गई थी। रामदत्त

और दत्तू की कुहनियों को मैंने ख़ुद देखा; अभी तक उनमें मेख़ों के निशान बने हैं। जिस मनुष्य ने इन लोगों को यह दारुण दण्ड दिया उसका नाम अलाबख़्श है। वह फ़तेहजङ्ग का नौकर है। इन दोनों आदमियों को ऐसी सख़्त चोट पहुँची कि उनको जेल के अस्पताल में भेजना पड़ा। वहाँ, कई महीने में, उनके घाव आराम हुए"।

"जेल देखकर और शिकायत करनेवालों के बयान लिखकर मैं हवालात देखने गया। वहाँ मुझे १५ आदमी क़ैद मिले। महीनों से वे वहाँ पड़े थे; परन्तु दो को छोड़कर औरों का बयान तक न लिखा गया था। ६ आदमी एक चोरी में शामिल रहने के शुभा में पकड़े गये थे। अकेले एक जासूस के कहने से फ़तेहजङ्ग ने उनको पकड़ा था। उनमें से एक का नाम देवासिंह है। वह कहता है कि फ़तेहजङ्ग ने मार-मारकर उससे अपराध स्वीकार कराया है। हरनामसिंह कहता है कि वह फ़तेहजङ्ग के घर पर क़ैद था। वहाँ उस * * * में मेख़ ठोंक दी गई थी, फिर वह अस्पताल भेज दिया गया था। मैंने उसे अपनी आँखों से देखा। उसके ख़िलाफ़ कोई सबूत नहीं। उसकी माँ रूपा कहती है कि फ़तेहजङ्ग और अलाबख़्श ने उसे नङ्गा करना चाहा। उसे अगस्त के महीने में धूप में उन्होंने खड़ा रक्खा और पीने को पानी तक न दिया। उसके मुँह पर फ़तेहजङ्ग ने मैले का तोबड़ा बाँध दिया। वह यह भी कहती है कि उसका घर भी

खोद डाला गया और जो रुपया-पैसा निकला वह फ़तेहजङ्ग उठा ले गया"।

बार्नेस साहब ने ऐसे ही अनेक राक्षसी दण्डों की बातें लिखी हैं। उस ज़माने में, मेख़ ठोक देना और लाल मिर्च तथा मैले का तोबड़ा चढ़ा देना तो बहुत साधारण बात थी। फ़तेहजङ्ग केवल एक परवाने-नवीस था। परन्तु डेप्युटी कमिश्नर साहब ने उसे निःसीम शक्ति दे रक्खी थी। वह जहाँ चाहता था जाता था; जो चाहता करता था; उसका घर ही हवालात का काम देता था; उसकी बैठक ही कचहरी थी। बार्नेस साहब ने अपनी रिपोर्ट चीफ़ कमिश्नर को भेजी; चीफ़ कमिश्नर ने लार्ड डलहौसी को लिखा। लाट साहब ने, विलायत में, कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स को ख़बर दी। तब कहीं डेप्युटी कमिश्नर साहब की न्यायपरायणता का न्याय हुआ। कोई दो वर्ष में विलायत से हुक्म निकला कि मेरेटन साहब डेप्युटी कमिश्नर से असिस्टंट कमिश्नर कर दिये जायँ। तब तक उन्होंने तीन वर्ष की "फरलो" ले ली। फ़तेहजङ्ग ८ वर्ष के लिए जेल भेजा गया और उसका भाई बरख़ास्त कर दिया गया। जिस जेलर ने केवल ज़बानी हुक्म से निरपराध लोगों को जेल में ठूँसा था उसको केवल "धमकी" मिली। और जेल के जिन डाक्टर साहब ने उन बेचारे सिक्खों की चुपचाप दवादारू की थी उनके लिए भी "धमकी" ही काफ़ी समझी गई।

इस समय भी, कभी-कभी, अख़बारों में पुलिस के अमानुषी कर्मों की कथा सुनने को मिलती है; परन्तु ग़दर के पहले के भीषण दण्डों का विचार करके हृदय काँप उठता है। अच्छा हुआ, ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इस देश का राजसूत्र, ईस्ट इंडिया कम्पनी से अपने हाथ में ले लिया।

वाजिदअली शाह के ज़माने में अवध के डाकू, लुटेरे और बाग़ी तअल्लुक़ेदार भी बहुत ही भयङ्कर शरीर-दण्ड देते थे। उनका ज़िक्र वाजिदअली शाह के जीवन-चरित में पढ़ने को मिलेगा।

[अगस्त १९०५

६—कलकत्ते की काल-कोठरी

१७५६ ईसवी के एप्रिल महीने में मुरशिदाबाद के नव्वाब अलीवर्दी ख़ाँ की मृत्यु हुई। उसके मरने पर सिराजुद्दौला को नव्वाबी मिली। अँगरेज़-ग्रन्थकार सिराजुद्दौला को दुर्गुणों की खानि बतलाते हैं। वे कहते हैं कि उसे अँगरेज़ों से सख़्त नफ़रत थी। उस समय ग्रेट-ब्रिटन और फ़्रांस में एक और लड़ाई छिड़नेवाली थी। इसलिए नव्वाब को लोगों ने सुझाया कि अँगरेज़ कलकत्ते में क़िलाबन्दी कर रहे हैं और शीघ्र ही वे चन्द्रनगर के फ़रासीसियों पर चढ़ाई करेंगे। फ़रासीसी थे नव्वाब के कृपापात्र। अपने कई कर्म्मचारियों से सिराजुद्दौला नाराज़ हो गया था; अतएव दण्ड से बचने के लिए वे लोग मुरशिदाबाद से कलकत्ते भाग गये थे। इन कारणों से सिराजुद्दौला अँगरेज़ों पर बहुत ही कुपित हो गया था। परन्तु किसी-किसी का मत है कि अँगरेज़ों को लूट लेने का उसने पहले ही से पक्का इरादा कर लिया था। इसके लिए जो कारण उसने बतलाये थे वे केवल बहाना मात्र थे। उसने सुन रक्खा था कि अँगरेज़ों के पास अपार सम्पत्ति है। इस सम्पत्ति को छीनने के लिए उसकी लार लड़कपन से टपकती थी।

सिराजुद्दौला को बहुत कम उम्र में नव्वाबी मिली। नव्वाब होते ही, मुरशिदाबाद के पास, अँगरेज़ों की क़ासिमबाज़ार-

वाली कोठी को उसने लूटा। जो कुछ माल और रुपया उसे मिला उसको कब्ज़े में करके, वहाँ के अँगरेज़-व्यापारियों को उसने क़ैद कर लिया। फिर १७५६ ईसवी के जून महीने में ५०,००० पैदल और बहुत सी तोपें लेकर, उसने कलकत्ते पर हमला किया। उस समय कलकत्ते में अँगरेज़ों की संख्या कुल ५०० के क़रीब थी। उनमें से लड़नेवाले गोरे सिपाही १७० ही थे। १५ जून को लड़ाई शुरू हुई। १८ तारीख़ को स्त्रियाँ और बच्चे जहाज़ों पर पहुँचा दिये गये; उन्हीं के साथ कितने ही अँगरेज़ भी निकल गये। ड्रेक साहब कलकत्ते के गवर्नर थे; वे भी उसी दिन वहाँ से चलते हुए। उनके चले जाने पर बचे हुए अँगरेज़ों ने हालव्यल साहब को गवर्नर माना। पचास हज़ार फ़ौज के सामने सौ पचास अँगरेज़ क्या कर सकते थे? अन्त में, लाचार होकर, १९ जून को, तीसरे पहर, इन लोगों ने अपने को नव्वाब के हाथ में सौंप दिया।

इसके उपरान्त जो कुछ हुआ उसे सुनकर योरप काँप उठा। सब क़ैदी एक अँगरेज़ी बारिक में इकट्ठे किये गये। उसके एक छोर पर अँगरेज़ों के फ़ौजी क़ैदियों के लिए हवालात की तरह, एक कोठरी थी। इस हवालात का अँगरेज़ी नाम "ब्लैक-होल" था। इसी में १४६ क़ैदी, मर्द और औरत, सब, भर दिये गये। यह "ब्लैक-होल" नामक काल-कोठरी १८१८ ईसवी तक यथास्थित थी। उसका उस समय तक

का वर्णन कई लोगों ने, जिन्होंने उसे देखा था, किया है। इसके बाद वह गिरा दी गई। परन्तु, कुछ समय हुआ, बँगला भाषा में सिराजुद्दौला के ऊपर एक किताब प्रकाशित हुई है। उसमें यह सिद्ध किया गया है कि काल-कोठरी एक ख़याली बात है। उसका जितना क्षेत्रफल बतलाया जाता है उसमें १४६ आदमी हरगिज़-हरगिज़ नहीं आ सकते। इस किताब के तर्क और सिद्धान्तों का खण्डन एक योरोपियन लेखक ने, अभी कुछ दिन हुए, "ब्लैक-उड्स मैगेज़ीन" नामक सामयिक पत्रिका में बड़ी योग्यता से किया है। इस कोठरी में जो लोग भरे गये थे उनमें से कलकत्ते के अल्प-कालिक गवर्नर, हालव्यल साहब, भी थे। १९ जून, रविवार, की यन्त्रणा भोगकर वे जीते बच गये थे। उन्होंने इस काल-कोठरी का जो रुधिर-शोषक वृत्तान्त लिखा है उसे ही हम यहाँ पर देते हैं। चाहे वह ख़याली हो, चाहे सच।*

पूर्वोक्त १४६ आदमियों में से, सोमवार २० जून को, सुबह, जब काल-कोठरी का दरवाज़ा खोला गया, तब केवल २३ आदमी जीते निकले। इनमें से एक स्त्री भी थी। मरे हुओं में से कितने ही कौंसिल के मेम्बर थे; कितने ही

* सुनते हैं, कलकत्ते में जहाँ पर यह काल-कोठरी थी वहाँ पर लार्ड कर्ज़न की आज्ञा से कोई स्मरणचिह्न खड़ा कर दिया गया है। सो चाहे यह कोठरी काल्पनिक रही हो, चाहे यथार्थिक; कम से कम अँगरेज़ों को तो इसका स्मरण हुआ ही करेगा।

फ़ौजी अफ़सर थे; और कितने ही व्यापारी थे। इन सबके नामों की तालिका भी हालव्यल साहब ने दी है।

हालव्यल ने काल-कोठरी का जो बयान लिखा है वह पत्र के रूप में है। यह पत्र उन्होंने साइरन नामक जहाज़ पर से, २८ फ़रवरी १७५७ ईसवी को, विलियम डेविस नामक अपने एक मित्र को लिखा था। पत्र बहुत लम्बा है। उसे पढ़कर पढ़नेवाले का ख़ून खौलने लगता है। उसका शाब्दिक अनुवाद न देकर हम उसका केवल सारांश यहाँ पर लिखते हैं। यह सारांश हालव्यल साहब ही के मुँह से सुनिए।

"ईस्ट इंडिया कम्पनी की बङ्गालवाली ज़मींदारी छिन जाने पर लन्दन में बड़ा ही शोरो-ग़ुल हुआ होगा। ब्लैक-होल में जिन लोगों को अपने प्राण देने पड़े उनकी मौत का समाचार सुनकर वह शोरो-ग़ुल और भी बढ़ गया होगा। तुमने सुना ही होगा कि १४६ में से सिर्फ़ २३ आदमी, २० जून १७५६ को, ब्लैक-होल से ज़िन्दा निकले। जो मरने से बचे उनमें से कुछ ऐसे ज़रूर थे जो इस लोमहर्षण हादसे का बयान लिख सकते थे; परन्तु उनमें से किसी ने लिखने की कोशिश नहीं की। मैं कई बार लिखने बैठा और कई बार क़लम रख देना पड़ा। क़लम उठाते ही उस रात की घोर हृदय-कम्प-कारिणी यन्त्रणायें मेरी आँखों के सामने आने लगीं। अँगरेज़ी भाषा के कोश में ऐसे शब्द ही नहीं जिनसे सैकड़ों नर-नारियों की अवर्णनीय यातना पहुँचा-

कर उनका प्राण हरनेवाली वह महा भयानक दुर्घटना बयान की जा सके। भाषा में यह शक्ति ही नहीं कि वह उसका पूरा-पूरा चित्र उतार सके। चाहे कोई उसे जितनी रङ्गीन बनावे; चाहे उसमें कोई जितना नमक-मिर्च मिलावे; वह उस भयङ्कर हत्याकाण्ड का पूरे तौर पर हरगिज़-हरगिज़ वर्णन न लिख सकेगा। परन्तु लिखना अवश्य होगा। ऐसी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना को लिख रखना बहुत ज़रूरी बात है। इसी लिए मैं आज दिल कड़ा करके लिखने बैठा हूँ। तबीयत भी अब मेरी अच्छी है। ब्लैक-होल की विपद ने मेरे शरीर को जो धक्का पहुँचाया था उसका असर अभी तक मुझमें बना है; अभी तक मैं सबल नहीं हुआ। परन्तु लिखने लायक़ हो गया हूँ। सामुद्रिक वायु से मुझे बहुत फ़ायदा पहुँचा है। इसलिए उस कालरात्रि का वर्णन अब मैं आरम्भ करता हूँ। सुनिए।

"१९ जून को शाम के ६ बजे के पहले ही कलकत्ते का क़िला नव्वाब के क़ब्ज़े में आ गया। मैं तीन बार नव्वाब से मिला। आख़िरी बार मैं ७ बजे मिला था। नव्वाब ने मुझे विश्वास दिलाया कि हम लोगों का बाल भी बाँका न होगा। और, मैं समझता हूँ, उसका हुक्म भी ऐसा ही था। परन्तु हम लोग जिनके सिपुर्द किये गये उनके कितने ही साथियों को हमने लड़ाई में मारा था। यह बात उनके दिलों में बहुत खटकती थी। इसलिए वे लोग मन ही मन हमसे जल रहे थे और

बदला लेने के लिए उतावले हो रहे थे। जब अँधेरा हुआ तब हम लोगों की निगरानी के लिए जो गारद तैनात थी वह डबल कर दी गई। उसके हुक्म से हम सब बारिक के बरामदे में इकट्ठे होकर एक जगह बैठ गये। इतने में कलकत्ते की कोठी से ज्वाला निकलने लगी; उसमें आग लगा दी गई। दाहिनी तरफ़ जो हथियार-घर था वह भी जलने लगा; और बाईं तरफ़ जो बढ़ई लोगों का कारख़ाना था वह भी ज्वाला वमन करने लगा। हम लोगों ने समझा कि सब तरफ़ से आग लगाकर उसी में हमको भून डालने का बन्दोबस्त हो रहा है। साढ़े सात बजने पर, कुछ फ़ौज, अपने अफ़सरों के साथ, हाथों में मशालें लिये हुए हमारे पास आ पहुँची। इस पर हम लोगों को अपने जलाये जाने का निश्चय हो गया। तब हम सबने मनसूबा किया कि इस प्रकार जीते जलना मंज़ूर करने की अपेक्षा इन लोगों पर एकदम हमला करके इनके शस्त्र छीन लेना चाहिए और इनको इस अमानुषी कर्म्म का मज़ा चखाना चाहिए। परन्तु हमारा सन्देह केवल भ्रम था। वे लोग मशालें जलाकर हमको रात भर क़ैद रखने के लिए जगह ढूँढ़ते थे।

"इस समय लीच साहब मेरे पास आये। वे कम्पनी के कारख़ाने में लोहार का भी काम करते थे और लेखक का भी। मुझे सुरक्षित भगा ले जाने के लिए उन्होंने पास ही एक नाव तैयार कर ली थी। हमारे पहरेवाले भी हम लोगों

की तरफ़ से बहुत वेपरवाह थे। इसलिए यदि मैं चाहता तो निःशङ्क भाग जाता। परन्तु अपने साथियों को छोड़कर भाग जाना मैंने कृतघ्नता समझा। इसलिए मैंने लीच से कहा कि तुम जिस रास्ते आये हो उसी रास्ते फ़ौरन वापस चले जाव। मैं औरों को छोड़कर अकेला नहीं जा सकता। यह सुनकर वह वीर और परोपकारी पुरुष हम लोगों के दुर्भाग्य का हिस्सेदार बना। वह भी हम सबमें शामिल हो गया।

"इतने में नव्वाब की गारद हमारी ओर बढ़ी और हम को बारिक के भीतर ले चली। लोग बहुत ख़ुश हुए। हमने समझा, वहाँ पर, रात सुख से कट जायगी। इस सुखाशा का नाश एक ही मिनट में हो गया। ज्योंही सब लोग भीतर आ गये त्योंही गारद के अगले आदमियों ने, अपनी बन्दूकें सामने करके, उस लम्बी दालान के दक्षिण तरफ़ बनी हुई काल-कोठरी में घुसने के लिए हमको हुक्म दिया। उधर गारद के दूसरे हिस्से ने, डण्डे उठाकर और नङ्गी तलवारें निकालकर, हम लोगों को पीछे से दबाया। इस तरह हम लोग उसमें घुसने के लिए मजबूर किये गये। हम न जानते थे कि वह कोठरी इतनी तङ्ग है, नहीं तो हम लोग हरगिज़ उसके भीतर न घुसते; फिर चाहे हमारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े क्यों न उड़ा दिये जाते।

"सब तरफ़ से मजबूर किये जाने पर हम लोग उस कोठरी के भीतर घुसे। मैं पहले घुसा; मेरे साथ ही सात-आठ आदमी

श्रीर भी भीतर गये। मैं दरवाज़े के पास की खिड़की के नीचे खड़ा हो गया। कोल्स श्रीर स्काट साहब को भी मैंने अपने पास ले लिया; वे दोनों घायल थे। मेरे दोस्त, इस बात को न भूलना कि वह कोठरी कुल १८ फ़ुट लम्बी-चौड़ी थी। श्रीर उसमें हम सब १४६ नर-नारी, भेड़-बकरियों की तरह, भरे थे। मौसम गरमी का था; सो भी बङ्गाल का। कोठरी तीन तरफ़ से बिलकुल बन्द थी। एक तरफ़ मात्र दो खिड़कियाँ थीं। उनमें भी लोहे के मज़बूत डण्डे लगे थे। ताज़ी हवा मिलना सर्वथा दुर्लभ था। ऐसी हालत में रक्त का अभिसरण प्रायः असम्भव था। ज़रा देर में मृत्यु आँखों के सामने नज़र आने लगी। किवाड़े तोड़कर निकल जाने की बहुत कोशिश की गई; परन्तु व्यर्थ।

"गड़बड़ शुरू हुई। सब लोग छटपटाने लगे। मार-पीट की नौबत पहुँची। मैंने बहुत समझाया श्रीर कहा कि जैसे तुम लोगों ने दिन को मेरी आज्ञा मानी है, वैसे ही इस समय भी तुमको माननी चाहिए। सवेरे हम लोग यहाँ से निकाले जायँगे। यदि तुम धीरज के साथ रात न काटोगे तो इससे जोते निकलना असम्भव है। सबको चाहिए कि वे अपनी जान के लिए, श्रीर अपने बाल-बच्चों के लिए, इस विपद को चुपचाप झेलें। बेफ़ायदा बकवाद करने श्रीर परस्पर लड़ने-झगड़ने से, श्रीर तो कुछ होने का नहीं, परन्तु मौत आने में जलदी होगी। मेरे उपदेश श्रीर मेरी प्रार्थना

ने कुछ काम किया। ज़रा देर के लिए लोग चुप हो गये। मैं सोचने लगा। मैं अनेक रूपों में मौत को सामने देखने लगा। मेरे दोनों घायल दोस्त अपने कराहने से मेरे मृत्यु-दर्शन के दृश्य में विघ्न डालने लगे। मैं समझ गया कि क्या होनेवाला है। मृत्यु-नर्तकी ने सबके चेहरों को अपनी भयङ्कर रङ्गभूमि बनाया। मैं अपनी दशा को भूल गया; परन्तु अपने साथियों की यम-यातना ने मुझे बहुत ही विकल किया।

"मेरी खिड़की के पास गारद का एक बुड्ढा जमादार था। उसके चेहरे पर मैंने कुछ आदमियत के निशान देखे। उसको मैंने पास बुलाया। पत्थर को भी विदीर्ण करनेवाली हमारी दुर्दशा उसने देखी। मैंने उसे एक हज़ार रुपये देने का वादा किया और कहा कि किसी तरह वह हम सबको आधे-आधे दो जगह कर दे। उसको कुछ दया आई। उसने प्रयत्न करने का वचन दिया। कुछ देर के लिए वह बाहर गया; परन्तु लौटकर उसने अपनी असमर्थता प्रकट की। मैंने समझा, एक हज़ार का पारितोषिक कम था। इसलिए मैंने उसे डबल कर दिया। जमादार फिर बाहर गया; परन्तु फिर नाकामियाब वापस आया। उसने कहा, नव्वाब साहब सोते हैं; उनको जगाना जान को खोना है। और उनके हुक्म के सिवा और किसी में शक्ति नहीं जो तुमको यहाँ से निकाल सके।

"हम लोगों की घबराहट और बेचैनी बढ़ने लगी। पसीने की धारा बदन से निकल पड़ी। कपड़े सब सराबोर हो गये।

सबका कण्ठ सूखने लगा; प्यास बढ़ी; और जैसे-जैसे बदन की नमी पसीना होकर निकलने लगी वैसे-वैसे प्यास प्रचण्ड होती गई। प्यास की यह दशा और कोठरी में हवा का नाम नहीं! हम लोगों ने कपड़े उतार डाले और टोपियाँ हिलाना शुरू किया। इससे कुछ आराम मिला; परन्तु बहुत थोड़ी देर के लिए। सबकी सलाह से हम लोग, जो अब तक खड़े थे, बैठ गये। इस समय ८ बजे थे। बैठने से वायु का कुछ अधिक सञ्चार ज़रूर हुआ; परन्तु, जगह कम होने के कारण, हम लोगों को कई बार उठना-बैठना पड़ा। मैंने देखा कि बैठकर उठने में बड़ी मुशकिल होती थी; क्योंकि आदमी एक दूसरे से सटे थे। इनमें से कुछ ऐसे थे जो बहुत कमज़ोर थे; उनमें बैठकर उठने की शक्ति ही न थी। हाय, हाय! उनकी वहीं मौत हो गई। उठने का हुक्म पाने पर वे उठ नहीं सके। वे अभागे वहीं बैठे-बैठे कुचल गये। यदि किसी में प्राणवायु शेष भी रही तो, ज़रा देर में, नीचे निर्वात स्थान में पड़े रहने के कारण, दम घुटकर, वह भी चलता हुआ।

"नौ बजे के क़रीब प्यास असह्य हो गई। साँस लेने में कठिनता होने लगी। हमारी हालत जानवरों से भी बदतर थी। झटपट मौत आ जाती तो अच्छा था। किवाड़ तोड़ने की फिर कोशिश हुई। सबने बेतहाशा ज़ोर लगाया; परन्तु सब व्यर्थ। गारद के सिपाहियों पर गालियों की वर्षा होने लगी; उनको महा अपमानसूचक और घृणित बातें सुनाई

गई। आशा थी कि इस बेइज़्ज़ती का बदला लेने के लिए वे हम लोगों पर बन्दूक़ छोड़ेंगे; परन्तु ऐसा न हुआ। मेरी दशा अब तक ख़राब न थी। खिड़की में जो लोहे की शलाकायें थीं उन्हीं में से, दो के बीच, मैंने अपना मुँह लगा दिया था। इससे मुझे थोड़ी-बहुत हवा मिलती थी। इस समय उस काल-कोठरी में ऐसी बदबू पैदा हो गई थी कि मेरी नाक फटने लगी। मैं, हज़ार कोशिश करने पर भी, उस तरफ़ मुँह न फेर सका। जो लोग खिड़की के पास थे उनको छोड़कर बाक़ी सब एक दूसरे का अपमान करने लगे; बुरा-भला कहने लगे। कुछ बेहोश हो गये; और उस बेहोशी की हालत में, जो कुछ मुँह से निकला, बकने लगे। सबके मुँह से पानी, पानी, पानी की चिल्लाहट सुनाई पड़ने लगी। उस बुड्ढे जमादार को हम पर दया आई। उसने मशकों में पानी लाये जाने का हुक्म दिया। यह देख मैं घबरा उठा। मैंने मन में कहा, अब कोई नहीं बचेगा। इस नरक-यातना की कहानी कहने के लिए एक भी शेष न रहेगा। मैंने जमादार से चुपचाप कहना चाहा कि पानी लाना हम लोगों के लिए मौत बुलाना है। परन्तु मेरी सुने कौन? मैंने सबका अन्त समीप आ गया समझा।

"अब तक मुझे प्यास न थी। पर पानी देखकर मुझे भी उसकी इच्छा हुई। पानी पिलाया किस तरह जाय? बर्तन तो कोई था ही नहीं। यह कठिनाई हमारी टोपियों

ने हल कर दी। मैं और मेरे दो-तीन साथी, जो खिड़की के पास थे, टोपियों में पानी लेने लगे और बहुत शीघ्रता से उसे सबको पहुँचाने लगे। परन्तु इस पानी ने प्यास को और भी बढ़ाया। उससे एक क्षण ही भर सन्तोष हुआ। पीछे फिर वही दशा। फिर पानी, पानी, पानी की आवाज़। हम लोग टोपियों को पानी से खूब भर लाते थे; परन्तु उसे पाने के लिए, आपस में, जो मार-पीट, जो घूँसेबाज़ी और जो बल प्रयोग होता था, वह उसे गिराकर छटाँक ही डेढ़ छटाँक रहने देता था। पीनेवाले के होंठों तक पहुँचने के समय, एक टोपी में, इससे अधिक पानी न रह जाता था। जलती हुई आग में पानी छिड़कने से जैसे वह और भी अधिक प्रज्वलित हो उठती है वैसी ही दशा हम सबकी हुई। प्यास की सीमा न रही; वह अपनी हद का उल्लङ्घन कर गई।

"मेरे प्यारे दोस्त, मैं उन लोगों की बेकली का तुमसे किस प्रकार वर्णन करूँ जो उस काल-कोठरी में सबसे दूर थे। उनको एक भी बूँद पानी मिलने की आशा न थी; परन्तु तिस पर भी जीने से वे निराश नहीं हुए थे। उनमें से कुछ ऐसे थे जिन पर मेरा बहुत प्रेम था। वे बड़े ही करुण स्वर में पानी के लिए मुझसे प्रार्थना करते थे और पुराने प्रेम का परिचय देकर, बार-बार, मुझे उसकी याद दिलाते थे। दोस्त, अगर सोच सको तो सोचो कि उस समय मेरी क्या दशा हुई होगी। मुझे आश्चर्य है कि मेरा हृदय क्यों नहीं

फट गया। मेरा कलेजा मुँह के रास्ते क्यों नहीं बाहर निकल आया। मैं सर्वथा लाचार था। मैं उन तक पानी न पहुँचा सकता था। लोगों की हालत अबतर हो गई। दृश्य भयानक दिखाई देने लगा। जो लोग दूर थे वे बल-पूर्वक दूसरों को हटाकर पानीवाली खिड़की के पास पहुँचने लगे। खिड़की के पास बेतरह भीड़ हुई; पल-पल पर कश-मकश बढ़ने लगी। जो लोग अधिक सशक्त और बलवान् थे वे कमज़ोरों को पैरों के नीचे कुचलकर खिड़की के पास आ पहुँचे। इस अमानुषो कर्म्म से अनेक पिस गये और मौत ने ख़ुशी-ख़ुशी उनको उसी क्षण ग्रास कर लिया।

"क्या तुम विश्वास करोगे कि गारद में जो लोग उस काल-कोठरी के बाहर थे वे हमारे इस प्राणान्तक कष्ट को, इस अनिर्वचनीय विपद को, इस घोर दुर्दशा को, देख-देख हँसते थे! उनके लिए यह एक अच्छा तमाशा था। वे बराबर पानी देते जाते थे जिसमें हम लोग उसके लिए लड़-लड़कर प्राणों से हाथ धोते जावें। खिड़की के पास मशालें भी उन्होंने लगा दी थीं, जिसका मतलब यह था कि इस नर-नारी-यातना नाटक का कोई अङ्क उनका बे-देखा न रह जाय। ११ बजे तक मैंने यह नाटक देखा और पानी पहुँचाता रहा। आगे मैं न देख सका। मेरे पैरों की हड्डियाँ टूटने लगीं। सब तरफ़ के दबाव से मैं म्रियमाण हो गया। लोग अपने आपको अब भूलने लगे। मेरा मान अभी तक

बराबर रक्खा गया था; परन्तु अब वह लोप होने लगा। समय ही ऐसा था। मरने के वक्त कौन किसका साथी होता है? क्रम-क्रम से उम्र का, विद्या का, वैभव का, सब ख़याल जाता रहा। मेरे कितने ही मित्र और स्नेही, जो बहुत बड़े रुतबे के आदमी थे, मेरे पैरों के पास मरे पड़े थे। अब उनको नाचीज़ फ़ौजी गोरे अपने बूटों से कुचलने लगे। उनके ऊपर पैर रखते हुए वे खिड़की के पास पानी के लिए आ पहुँचे। मैं दबकर मरने लगा। मेरा हाथ-पैर हिलाना बन्द हो गया। मैंने हाथ जोड़े, प्रार्थना की, विनती की, और कहा, भाई, मेरे ऊपर से ज़रा हटो। मैं खिड़की के पास नहीं रहना चाहता। मैं कमरे के बीच में चला जाऊँगा। मुझे निकल जाने दो। मेरे गिड़गिड़ाने का कुछ असर हुआ। मुझे रास्ता मिला। मैं काल-कोठरी के बीच में आया। वहाँ मुर्दों का ढेर था। तब तक एक तिहाई मर चुके थे। दूसरी खिड़की पर भी पानी आ गया था। इसलिए उस तरफ़ भी ख़ूब भीड़ लग गई थी। इसी से बीच में कमरा ख़ाली था। पर मुर्दों से नहीं, ज़िन्दों से।

"कमरे में एक तरफ़ एक चबूतरा था। मुर्दों के ऊपर पैर रखते हुए मैं वहाँ पहुँचा और एक जगह बैठ गया। यह मुझे निश्चय हो गया कि अब मैं मरूँगा। परन्तु अफ़सोस इस बात का हुआ कि मरने में विलम्ब था। मेरे पास ही कप्तान स्टिवेनसन और डम्बुल्टन पड़े थे। डम्बुल्टन का दम

उस समय निकल रहा था। जब से मैंने खिड़की छोड़ी, मुझे साँस लेने में तकलीफ़ होने लगी। थोड़ी देर में मेरे दोस्त यडवर्ड श्रायर, मुर्दों के ऊपर पैर रखते और ठोकरें खाते, मेरे पास आये। उन्होंने पूछा कि मेरी क्या हालत है। परन्तु मैं जवाब न देने पाया था कि वे वहीं गिरे और मर गये! मैंने अपनी आत्मा ईश्वर को सौंपी और मौत का रास्ता देखने लगा। मुझे सख़्त प्यास मालूम हुई। दस मिनट बाद साँस लेने की कठिनाई और भी बढ़ी। मेरी छाती में बड़ा दर्द हुआ। दिल धड़कने लगा। मैं फिर खड़ा हो गया। यह तकलीफ़ देर तक मैं नहीं बरदाश्त कर सका। इसे कम करने के लिए हवा की बड़ी ज़रूरत थी। इसलिए मैं फिर खिड़की की तरफ़ लपका। उस समय मुझमें दूना बल आ गया। झपटकर मैंने खिड़की की शलाका पकड़ ली। ऐसा करने में मुझे छः-सात आदमियों को हटाना पड़ा। मेरा दर्द जाता रहा; दिल का धड़कना भी बन्द हो गया; साँस भी ठीक तौर पर चलने लगी। पर प्यास ने ज़ोर किया। "भगवान् के लिए मुझे पानी दो" यह कहकर मैं चिल्ला उठा। लोगों ने मुझे मरा समझा था। परन्तु मेरी आवाज़ से उन्होंने जाना कि मैं जीता हूँ। सबने मुझे पहले पानी देने की प्रार्थना की। मैंने पानी पिया; पर मेरी प्यास न गई। वह और भी बढ़ी। मैंने कहा, बहुत पानी पीना बेकार है। उस समय मेरी कमीज़ पसीने से सराबोर थी। उसी के

आस्तीन में चूसने लगा। सिर से भी पसीने की बूँदें बराबर बरस रही थीं। उन्हें भी मैं मुँह में लेने लगा। इस तरह मैं अपने होठ और हलक़ को नम बनाये रहा। जब मैं इस कोठरी में घुसा था तब मेरे बदन पर केवल एक कमीज़ थी। गरमी के कारण कोट मैंने पहले ही से न पहना था। वास्कट थी; परन्तु उसे देखकर गारद के एक जमादार की लार टपक पड़ी। उसे उसने ले लिया। कमीज़ के पसीने से मैं अपनी प्यास, यथा-सम्भव, बुझाने लगा था। परन्तु इसमें भी बाधा आई। मेरे एक साथी ने यह प्रस्वेद-पीयूष पीते मुझे देख लिया। वह मेरे पास ही था। उसने मेरी कमीज़ पर हमला किया। और मेरे जीवन का वह एकमात्र सहारा उसके द्वारा छीन लिया गया। मुझे पीछे से इस लुटेरे का पता लग गया। वे हमारे सुयोग्य लूशिंगटन साहब थे। आप भी इस कोठरी से जीते निकले थे।

"साढ़े ग्यारह बजे, जितने आदमी ज़िन्दा बचे थे सब, बदहवास होने को हुए। जिसके मुँह में जो आया सो उसने बका। मानापमान का ख़याल जाता रहा। पानी पर लोगों की प्रीति अब कम हुई। हवा, हवा, हवा, की आवाज़ सबके मुँह से निकलने लगी। गारद के ऊपर, सिराजुद्दौला के ऊपर और राजा मानिकचन्द नामक कलकत्ते के नये गवर्नर के ऊपर बहुत ही ख़राब-ख़राब गालियों की बौछार होने लगी। आशा थी कि इस प्रकार बेइज़्ज़ती होते

देख गारद के सिपाही ज़रूर गोली छोड़ेंगे। इसलिए कोठरी के लोग दौड़-दौड़कर खिड़की के पास आने लगे, जिसमें पहली ही गोली से उनका काम तमाम हो जाय। परन्तु गोली नहीं चली। सबको हताश होना पड़ा। अभागों को इस तरह मरना बदा ही न था। इस प्रकार बेबस होकर कितने ही आदमी मुर्दों के ऊपर ज़मीन पर गिर गये और वहीं पर पड़े-पड़े मौत के मुँह में चले गये। जिनमें कुछ शक्ति बची थी उन्होंने खिड़की की ओर दौड़ लगाई और दूसरों की पीठ, और किसी-किसी के सिर पर भी, होते हुए वे वहाँ पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने खिड़की के सीकचों को इतने ज़ोर से जा पकड़ा कि फिर वे उस जगह से किसी प्रकार हिलाये नहीं हिले। जो लोग इस बोझ और दबाव को नहीं सह सके वे गिर गये और गिरते ही उनका दम निकल गया। इस समय उस कमरे में निहायत सख़्त बदबू पैदा हो गई थी। यद्यपि मेरे ऊपर बहुत बोझ था, तथापि इस बदबू के कारण मैं अपना सिर नीचे न कर सकता था; दुःसह दुःख सहकर भी मैं खिड़की की ओर उसे उठाये ही रहता था। मेरे प्रियतम दोस्त, वज्र को भी विदीर्ण करनेवाली मेरी यह कहानी सुनकर तुमको मुझ पर अवश्य दया आवेगी। इसके कहने की तो मुझे कोई ज़रूरत ही नहीं। साढ़े ग्यारह बजे से दो बजे सुबह तक तीन आदमियों का बोझ मैं सँभाले रहा; तीन आदमी बराबर मुझ पर सवार रहे। अपने घुटने मेरी पीठ

पर अड़ाकर, एक मेरे सिर पर लदा था; एक डच सारजं मेरे बाँयें कन्धे पर था; और एक फ़ौजी गोरा मेरे दाहने कन्धे पर! पीछे की तरफ़ दोनों की पसुलियों में अपनी अँगुलियाँ घुसेड़कर उन्हें तो मैं कभी-कभी नीचे गिरा देता था; परन्तु मेरा वह दोस्त, जो मेरे सर पर था, किसी तरह मुझसे हिलाया नहीं हिला। उसने खिड़की की शलाका को ख़ूब ही मज़बूती से पकड़ रक्खा था। मैं इस कई मन के बोझ से चूर हो गया होता; परन्तु बचा इस कारण कि सब तरफ़ से मुझ पर दबाव था। इसी लिए मैं गिरा नहीं; पत्थर के समान जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया।

"यह दुर्दशा देर तक मैंने बरदाश्त की; परन्तु क्रम-क्रम से वह असह्य होने लगी। नैराश्य ने मुझे सब तरफ़ से घेर लिया। जीवन मुझे भारी भार मालूम होने लगा। मैंने अपने पाकेट से चाक़ू निकाला और अपना काम तमाम करना चाहा। परन्तु आत्महत्या का ख़याल करके मेरा हाथ रुक गया। अपनी कायरता पर मुझे खेद हुआ। फिर से मुझमें एक नई शक्ति ने प्रवेश किया। पर तीन आदमियों के नीचे वहाँ पर मैं सुबह तक नहीं रह सका। मैंने खिड़की को छोड़ना चाहा। मेरे पीछे केरी नामक एक जहाज़ी अफ़सर था; लड़ाई में उसने बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। उसके पास ही उसकी स्त्री भी थी। इन दोनों में इतना प्रेम था कि बहुत मना करने पर भी वह स्त्री अपने पति के साथ

इस काल-कोठरी में चली आई थी। केरी को मैंने अपनी जगह देनी चाही। मैं वहाँ से हटा; परन्तु, अफ़सोस, केरी वहाँ न पहुँच सका। मेरे हटते ही उस डच सारजंट ने मेरी जगह छीन ली। तथापि केरी ने मेरा बड़ा उपकार माना। अब हम दोनों मरने के लिए तैयार हुए। खिड़की छोड़कर हम दोनों पीछे हट आये। केरी की हालत अबतर थी। वह अधिक देर तक खड़ा न रह सका। विवश होकर उसे लेट जाना पड़ा और लेटते ही उसका प्राण-पखेरू उड़ गया। इस समय मैं क़रीब-क़रीब बेहोश था। मुझे सुख-दुःख का कम ज्ञान था। मेरी घबराहट बढ़ी। मुझे चक्कर आने लगा। इसलिए मैं लेट गया। मैंने देखा, मेरे पास ही बुड्ढे पादरी बेलामी की लाश पड़ी थी और वहीं उसके बेटे की भी। बेटा लफ़्टिनेंट था। बाप-बेटे ने, हाथ में हाथ रखकर, मौत पाई थी। लेटने पर मुझे इतना होश था कि मरने पर ज़रा देर में मैं भी औरों की तरह पैरों से कुचला जाऊँगा। इससे मैं कुछ डर गया। डरकर मैं सहसा फिर उठ खड़ा हुआ और कमरे के किनारेवाले उस चबूतरे पर चला गया जहाँ मैं एक बार पहले जा चुका था। वहाँ पहुँचकर जो मैं गिरा तो फिर मेरे होश-हवास एकदम चलते हुए। फिर मैं बेसुध होकर वहीं पड़ा रहा।

"बेहोशी की हालत में, इस भयानक ब्लैक-होल में, क्या-क्या हादसे हुए, मैं नहीं जानता। जो लोग होश में रहे उनका

बयान अत्युक्ति से इतना भरा हुआ है कि उस पर हरगिज़ विश्वास नहीं आता। जैसे-जैसे लोग मरते गये, हवा कुछ अधिक मिलती गई। इसी लिए कुछ आदमी मौत से बचे और अन्त तक होश में भी बने रहे। मैं नहीं मरा। परन्तु मुझे बचाने में केवल ईश्वर ही सहायक हुआ। जब सुबह के पाँच बज गये और बहुत गिड़गिड़ाने पर भी गारद ने उस काल-कोठरी का दरवाज़ा नहीं खोला तब लोगों को मेरी याद आई। उन्होंने समझा कि यदि मैं कहता-सुनता तो शायद दरवाज़ा खोल दिया जाता। लुशिंगटन और वालकट ने ढूँढ़ना शुरू किया। मैं मुर्दों के बीच में पड़ा था। मेरी कमीज़ को देखकर उन्होंने मुझे पहचाना। उनको मालूम हुआ कि तब तक मुझमें कुछ दम बाक़ी है। इसलिए वे मुझे खिड़की के पास ले गये। परन्तु अपना प्राण किसको प्यारा नहीं? अतएव खिड़की के पास मुझे जगह न मिली। अन्त में कप्तान मिल्स को मेरी हालतपर दया आई। वे खिड़की के पास से हट गये और उनकी जगह पर मैं रख दिया गया। इस वक्त ६ बजा था। नव्वाब सोकर उठ चुका था। रात को मौत ने उस कोठरी के भीतर जिस निर्दयता से लोगों को अपना शिकार बनाया था उसका हाल नव्वाब को सुनाया गया। उसने यह जानना चाहा कि हम लोगों का सरदार, अर्थात् मैं, जीता बचा हूँ या नहीं। इस बात को जानने के लिए एक जमादार दौड़ा आया। लोगों ने मुझे उसके सामने

किया और कहा कि यदि दरवाज़ा खोल दिया जाय तो मैं शायद बच जाऊँ। आखिर ब्लैक-होल का दरवाज़ा खुला। परन्तु खुलने के पहले ही खिड़की से आनेवाली प्रातःकालीन वायु ने मुझे सजीव कर दिया था। होश में आकर जो मैंने आँख खोली, मेरा कलेजा फटने लगा; मेरी आँखें फिर बन्द हो गईं। अपने चारों ओर मैंने अनर्थ हुआ देखा! हाय इतनी भयावनी नर-हत्या! सब तरफ़ मुर्दे ही मुर्दे!! लाश के ऊपर लाश!!! उस दृश्य के वर्णन का मैं यत्न न करूँगा! मेरी आँखों में आँसू उमड़ आये हैं। ज़रा ठहरो; मैं अब आगे नहीं लिख सकता।"

* * * * *

"कोई २० मिनट में मुर्दों को हटाकर रास्ता बनाया गया। तब हम लोग एक-एक करके बाहर आये। मुझे ज़ोर से बुख़ार था। मैं खड़ा न रह सका। इसलिए वहीं घास पर लेट गया। इतने में नव्वाब का हुक्म आया कि मैं फ़ौरन ही उसके सामने पेश किया जाऊँ। परन्तु मैं चल थोड़े ही सकता था। इसलिए दो आदमियों ने मुझे थाँभा। मैं धीरे-धीरे चला। रास्ते मे एक जमादार ने बहुत ही आत्मीयता दिखलाकर मुझसे कहा कि मुझे नव्वाब को बतला देना चाहिए कि ईस्ट इंडिया कम्पनी का ख़ज़ाना क़िले में किस जगह छिपा रक्खा है। उसने कहा कि यदि मैं न बताऊँगा तो मैं तोप से उड़ा दिया जाऊँगा। परन्तु मुझ पर

इस धमकी ने ज़रा भी असर न किया। मैं, उस समय, मौत की राह ही देख रहा था। वह महा निर्दयी और ज़ालिम नव्वाब मौत से अधिक अच्छा और क्या पारितोषिक मेरे लिए दे सकता था?

"मैं नव्वाब के सामने हाज़िर किया गया। पास ही लूट के माल का एक ढेर पड़ा था। उसमें से एक बड़ी सी किताब उठवाकर उस पर मुझे बैठ जाने का हुक्म मिला। मैं बैठ गया; परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी मेरे मुँह से आवाज़ न निकली। मेरी ज़बान सूख गई थी। यह देखकर नव्वाब ने पानी मँगवाया। पानी पीने पर वाक्‌शक्ति फिर मुझे प्राप्त हुई। मैं बोला। अपने और अपने साथियों पर रात की बीती बातें मैं कहने लगा। पर उन हृदयकम्पकारी बातों को सुनने से नव्वाब ने इन्कार किया। उसने मुझे रोक दिया और ख़ज़ाने की बातें पूछनी आरम्भ कीं। उसने कहा, मैंने सुना है कि बहुत सा ख़ज़ाना क़िले में गड़ा हुआ है। अगर तुम मुझसे कोई मेहरबानी चाहते हो तो उसे बतला दो। मैंने कहा, यह बिल्कुल झूठ है; यह ख़बर सरासर *ग़लत है। क़िले में ख़ज़ाना नहीं है; और यदि हो भी* तो मैं नहीं जानता। गत रात को दिये हुए नव्वाब के अभय वचनों का मैंने कई बार स्मरण दिलाया। परन्तु सब व्यर्थ हुआ। दुहाई-तिहाई देने पर भी मेरी बात का विश्वास किसी को न आया। मैं क़ैद रक्खा गया। नव्वाब की ख़ानगी

फ़ौज का जो जनरल था उसके मैं सिपुर्द हुआ। मेरे साथ कोर्ट, वालकाट और बरडेट साहब भी क़ैद रक्खे गये। शेष सब, जिनको मौत ने उस रात को न पूछा था, छोड़ दिये गये। केरी साहब की मेम की रिहाई अलबत्ते नहीं हुई। वह बहुत कमउम्र और ख़ूबसूरत थी। काल-कोठरी से निकाली गई लाशें बड़ी ही बेपरवाही से एक ख़न्दक़ में फेंक दी गईं और उन पर मिट्टी डाल दी गई।

"मेरे ऊपर जो इतनी सख़्ती हुई उसके कारण थे। एक तो यह था कि और लोगों के भाग जाने पर मैंने क़िले को बचाने की कोशिश की थी; और मैं बस भर लड़ा भी ख़ूब था। दूसरा यह कि नव्वाब को यह शक हो गया था कि क़िले में ख़ज़ाना है और मैं उसका भेद जानता हूँ। तीसरा यह कि अमीचन्द ने मेरी शिकायत नव्वाब से की थी। अमीचन्द को हम लोगों ने क़ैद कर लिया था। मैं चाहता तो क़िले की गवर्नरी मुझे मिलते ही मैं उसे रिहा कर देता; क्योंकि मैं जानता था कि उस पर अन्याय हुआ है; पर उस समय जल्दी में मैं यह बात भूल गया। इसी लिए अमीचन्द ने मुझे माफ़ नहीं किया; और माफ़ करना वह जानता भी नहीं। जो तीन आदमी मेरे साथी बनाये गये उनसे भी अमीचन्द की लाग-डाँट थी।

"२१ जून को सबेरे हम लोग एक बैलगाड़ी पर पड़ाव को पहुँचाये गये। वहाँ हमारे बेड़ियाँ डाली गईं। हम

चारों एक छोटी सी छोलदारी के भीतर रक्खे गये। इतनी छोटी छोलदारी कि हम सब "नोमे दरूँ नोमे बरूँ" की हालत में थे। दैव की गति को देखिए; रात को मूसलधार पानी बरसा। पर काल-कोठरी की अपेक्षा इस छोलदारी को हमने स्वर्ग समझा; इसमें हमें नन्दन वन का सुख मिला। अब तक मुझे बुख़ार था। आज बुख़ार जाता रहा और उसके गमन के साथ मेरे सारे बदन पर सैकड़ों फोड़ों का आगमन हुआ। २२ तारीख़ को सुबह हम लोग, वैसे ही बेड़ियाँ पहने हुए, प्रचण्ड धूप में, नदी के किनारे एक खुले हुए बरामदे में घसीटे गये। वहाँ मेरे तीन साथियों के बदन पर भी फोड़े निकल आये। काल-कोठरी की कराल यन्त्रणायें मानों फोड़ों के रूप में प्रकट हो गई। इस जगह हम लोगों को मुरशिदाबाद ले जाने का हुक्म हुआ। तुमने मुरशिदाबाद नहीं देखा; इसलिए मेरे साथ चलकर देख आओ। मुझे इस वक्त लिखने को फ़ुरसत है। पढ़ने के लिए तुमको फ़ुरसत पाना होगा।

"२४ को, तीसरे पहर, हम लोग नाव से रवाना हुए। नाव थी बड़ी, पर पुरानी थी। लूट का माल भी कुछ उसमें लदा था। थोड़ी दूर जाकर उसका एक तख़्ता टूट गया। इस कारण उसमें पानी आने लगा। तिस पर भी लोगों ने उसका पिण्ड नहीं छोड़ा। हमारा बिछौना था बाँसों का एक छोटा सा चट्टा। वही बिस्तरा, वही पलँग। बाँस एक से

नहीं थे; कोई छोटा था, कोई बड़ा। वहाँ लेटे-लेटे कभी-कभी हम लोग आधे पानी में चले जाते थे और आधे सूखे में रहते थे। हम लोग प्रायः दिगम्बर थे; बदन पर बहुत ही कम कपड़ा था। चलते वक़्त हाथ-पैर जोड़कर हम लोगों ने टाट को पुरानी बोरियों के दो-एक टुकड़े माँग लिये थे। धूप और बारिश से बचाने के वही हमारे एकमात्र सहायक थे। हमारे खाने के लिए सिर्फ़ चावल और पीने के लिए वही नदी का पानी था। यद्यपि हमारे शरीर फोड़ों से ढक गये थे और पैर लोहे से लदे थे, तिस पर भी हम लोगों ने यह चारा-पानी अपने लिए ग़नीमत समझा। मरने से हम लोग बच गये, यही हमारे लिए क्या कम था? इसी चावल ने हमारी जान बचाई। क्योंकि उस दशा में यदि हमें मद्य और मांस मिलता तो हम लोग कभी ज़िन्दा न रहते।

"जब हम लोग हुगली पहुँचे तब मैंने चिन्सुरा के डच गवर्नर विसडम को एक पत्र भेजा। लूट का जो माल था उसमें कुछ किताबें भी थीं। उनमें से मैंने, अपनी गारद के लोगों से, एक किताब माँग ली। उसके एक कोरे पन्ने पर यह पत्र मैंने लिखा। हमारी दुर्दशा का हाल सुनकर गवर्नर को दया आई। उसने कपड़े-लत्ते, खाने-पीने का सामान, और कुछ रुपये-पैसे भी भेजे। तीन नावें बराबर, एक दूसरे के बाद, वहाँ से छोड़ी गईं। परन्तु हम लोगों तक एक भी न पहुँची! रास्ते में बहुत सी दिल्लगी की बातें हुईं; परन्तु

इनको मैंने प्रत्यक्ष मिलने पर कहने के लिए रख छोड़ा है। हाँ, यहाँ पर, मैं इतना अवश्य कहूँगा कि मेरे हाथ फोड़ों से ख़ाली थे। इसलिए मुझे, कुछ समय तक, इस नाव में, बीमारदारी का काम करना पड़ा था। मैं अपने बीमार और गलित-देह दोस्तों को अपने हाथ से खिलाता था।

"जब हम लोग शान्तिपुर पहुँचे तब नाव में बेहद पानी भर गया। वह चलने लायक़ न रही। इसलिए गारद में से एक आदमी ज़मींदार के पास दो-एक हलकी नावें माँगने के लिए भेजा गया। परन्तु ज़मींदार ने उसे खूब पीटा और गाँव से निकाल दिया। इस बात का वहाँ किसी ने विश्वास ही न किया कि नव्वाब के क़ैदियों को ले जाने के लिए नावें दरकार थीं। जब वह आदमी लौट आया और ज़मींदार की गुस्ताख़ी का हाल उसने बयान किया तब हमारी गारद का जमादार गुस्से से लाल हो गया। सब लोग नाव से नीचे उतरे और हथियारबन्द होकर ज़मींदार को सज़ा देने के लिए चले। इतने में एक आदमी को एक ऐसी बात सूझी जो मेरे लिए मृत्यु थी। उसने जमादार से कहा कि वह मुझे अपने साथ इस बात का सुबूत देने के लिए ले चले कि सच-मुच ही अँगरेज़ क़ैदियों के लिए नावें दरकार हैं। मुझे फ़ौरन ही चलने के लिए हुक्म हुआ। मैंने अपने फोड़े दिखलाये और कहा कि मेरे लिए चलना सर्वथा असम्भव है। मेरे फोड़ों के ऊपर तक बेड़ियाँ थीं; मैं पैर हिला तक नहीं सकता

था। मैंने प्रार्थना की कि यदि मेरा जाना बहुत ही ज़रूरी है तो मेरी बेड़ियाँ थोड़ी देर के लिए निकाल ली जायँ। वे लोग अपनी आँखों से देख रहे थे कि मैं हिल न सकता था। परन्तु मेरी प्रार्थना का वही फल हुआ जो फल एक ख़ूँख़्वार शेर से प्रार्थना करने अथवा हवा से हाथ जोड़ने से होता। मैं चलने क्या, रेंगने के लिए लाचार किया गया। मुझे इस बात की याद दिलाई गई कि मैं कलकत्ते के क़िले में नहीं हूँ, और मेरा फ़र्ज़ इस समय यही है कि मैं हुक्म की तामील करूँ। मैं रास्ते पर लाया गया। जी कड़ा करके मैं चला। उस समय दोपहर होने में कुछ ही देर थी। धूप ख़ूब कड़ी थी। मेरे पैरों से ख़ून का नाला बहने लगा। पग-पग पर मैं बेहोश होकर ज़मीन पर गिरने से अपने शरीर को रोकने की चेष्टा करता था। वैसा दर्द मुझे कभी नहीं भोगना पड़ा। मैं उसका बयान नहीं कर सकता। उसे मेरा जी ही जानता है।

"जब हम लोग ज़िले की कचहरी के पास पहुँचे तब हमने ज़मींदार को अपनी फ़ौज-फाटा समेत मुक़ाबले के लिए तैयार पाया। परन्तु जब नव्वाब की गारद ने मुझे दिखलाया और चार लाख रुपये मेरी क़ीमत बतलाई, तब ज़मींदार ने अपनी ग़लती क़बूल की। उसने प्रतिकूलता तत्काल छोड़ दी और शान्तिपुर से नावें मँगा देने का वचन भी दिया। परन्तु जमादार ने उसे बाँधकर नाव पर भेजना चाहा। इस पर

ज़मींदार ने बहुत हाथ-पैर जोड़े। अन्त में, इस तकलीफ़ के बदले ख़ाविरख़्वाह पारितोषिक देने पर उसे रिहाई मिली।

"नाव से यह जगह कोई आध मील थी। मैं म्रियमाण दशा में था। गारदवालों ने जिस कठोरता और निर्दयता का व्यवहार मुझसे किया उस पर उनको भी पीछे से तरस आया। कुछ देर आराम करने के बाद मुझे वापस ले चलने को उन्हें हिम्मत हुई। उनका कलेजा रक्त-मांस का हरगिज़ न था; सख़्त पत्थर का था। परन्तु उनको भी दया आई। कुछ दूर तक वे मुझे गोद में ले गये। कुछ दूर तक मुझे उन्होंने दोनों तरफ़ से थाँभा; तब मैं चल सका। धूप से बचने के लिए उन्होंने अपनी ढालों से मुझ पर छाया की। भगवान्, तुम ऐसा दुःख दुश्मन को भी न देना। जहाँ हम लोग गये थे वहाँ शान्तिपुर का हमारा नायब गुमाश्ता मौजूद था। मेरी ऐसी दुर्दशा देख वह फूट-फूटकर रोने लगा। उसने केलों का एक गुच्छा मेरी नज़र किया। उसमें से आधा, रास्ते में, मेरी गारद ने लूट खाया।

"हम लोग फिर रवाना हुए। ज़मींदार ने वादा किया था कि नावें फ़ौरन ही आवेंगी। देखते-देखते आँखें फूट गईं; पर एक भी नाव न आई। तब लाचार होकर मछली मारने की एक डोंगी पर हम चारों लादे गये। हमारे साथ गारद के कुल दो आदमी रहे। अधिक रहने से डोंगी के डूबने का डर था। उस दिन जून की आख़िरी तारीख़ थी।

इस डोंगी में हम लोगों को जो बाँस का बिछौना मिला वह पहले से कुछ नरम था; परन्तु जगह बहुत ही कम थी। यहाँ तक कम कि हम लोग अच्छी तरह हिल भी न सकते थे। हिलने से हमारी बेड़ियाँ हमारे फोड़ों को फोड़ने लगती थीं। तकलीफ़ सख़्त थी। यहाँ से सात दिन में हम लोग मुरशिदाबाद पहुँचे। रास्ते में ख़ूब पानी बरसा; कभी-कभी धूप भी बहुत तेज़ हुई। हम लोगों को पानी भी सिर पर लेना पड़ा और धूप भी। इनसे रक्षा पाने का कोई उपाय न था। इस सफ़र में हम लोगों को सुख भी मिला। सुख क्या, उस हालत में, नियामत कहना चाहिए। हमारी गारद के एक आदमी की कृपा से, हमको, पीछे से, कभी-कभी दो-चार केले, प्याज़, चबेना, गुड़ और करैले मिलते थे। उनके साथ हमारा भात मज़े में गले से नीचे उतर जाता था। वे हमारे लिए बहुत ही लज़ीज़ चीज़ें थीं।

"७ जुलाई को हम लोग क़ासिमबाज़ार पहुँचे। वहाँ फ़्रांसवालों की कोठी थी। ला साहब उसके एजंट थे। उनको मैंने एक चिट्ठी भेजी। ला साहब उसे पाकर फ़ौरन मेरे पास आये और चिट्ठी ले जानेवाले गारद के आदमी को उन्होंने इनाम दिया। उन्होंने हम पर बड़ी कृपा की; ख़ूब सहानुभूति दिखलाई; और देर तक दुख-सुख की बातें कीं। कुछ देर के लिए उन्होंने हमको उतरवाना चाहा, और इनाम भी ख़ूब देने का वादा किया। पर गारद ने यह बात क़बूल न की। उसने

कहा कि ज़मीन पर उतारने से उसका सिर न रहेगा। अन्त में कपड़े-लत्ते, खाने का सामान, और कुछ रुपया देकर ला साहब बिदा हुए। हम लोगों ने उनकी कोठी के पासवाले नदी के किनारे को, धन्यवाद देते और कृतज्ञता प्रकाश करते हुए, छोड़ा।

"अँगरेज़ी खाने की चीज़ों को देखकर हमसे रहा न गया। हम लोगों ने खूब खाया। फल भी उसका शीघ्र ही मिला। सबने कुछ न कुछ तकलीफ़ उठाई। मेरी दाहिनी टाँग और जाँघ में सूजन हो आई। क़ासिमबाज़ारवाली अँगरेज़ी कोठी के पास से जब हम लोग गुज़रे तब मन की अजब हालत हो गई। चेहरों पर उदासी छा गई, दुःख की वेदना बढ़ गई। ७ जुलाई की शाम को ४ बजे हम मुरशिदाबाद पहुँचे और एक खुले हुए अस्तबल में रख दिये गये। यह अस्तबल शहर में नव्वाब के महलों के पास ही था। नाव से इस अस्तबल को लाये जाने में मुझे अपार दुःख हुआ। अपमान और मर्म-कृन्तक वेदना से विवश होकर मेरी आँखों से आँसू टप-टप गिरने लगे। हाँ, मैं एक भारी मुजरिम की तरह लाया गया और शहरवालों ने यह तमाशा देखा। इस अपमान, इस विपदा, इस सङ्कट को मेरी आत्मा न बरदाश्त कर सकी। फोड़ों में दर्द भी बढ़ा और टाँग की सूजन भी अधिक हो गई। इस क्लेश-परम्परा ने मेरे धैर्य्य का जड़ से नाश कर दिया।

"इस अस्तबल में एक तरफ़ मुसल्मानों का पहरा खड़ा हुआ और दूसरी तरफ़ हिन्दुओं का। नव्वाब के मुरशिदाबाद लौटने तक हमको इस महा घृणित जगह में पड़े रहने का हुक्म हुआ। मैं अपनी मुसीबतों का कहाँ तक वर्णन करूँ। दूर-दूर से लोग हमको देखने आते थे और सुबह से शाम तक इतनी भीड़ रहती थी कि हम लोग दुबारा गला घुटकर मरने से बहुत ही बचे। यहाँ पहुँचने पर मुझे ज्वर आया। दो दिन में वह उतरा। तब मेरी टाँग और जाँघ की सूजन बढ़ी और धीरे-धीरे उसने गठिया का रूप धारण किया। मैं और भी विपत्ति में फँसा। मैं क्या कहूँ, तुम खुद ही समझ देखो कि मेरी बेड़ियों ने इस नये अभ्यागत की कैसी ख़ातिरदारी की! हज़ार प्रार्थना करने और गिड़गिड़ाने पर भी मेरी वह बेचारी टाँग बेड़ी से वियुक्त न की गई। सुख और सन्तोष की इतनी बात यहाँ अवश्य हुई कि डचों और फ़रासीसियों की जो कोठियाँ क़ासिमबाज़ार में थीं उनके एजंटों ने हमारी बड़ी मदद की। हमारी रिहाई के लिए उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। हमारे खाने-पीने का सामान भी वही लोग भेजते रहे, और हमसे मिलने और हमको धैर्य देने के लिए वे रोज़ आते भी रहे। उनकी मेहरबानी को हम लोग आमरण कदापि नहीं भूल सकते।

"आरमीनिया के व्यापारियों ने भी हमारे साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया। हेस्टिंग्ज़ और चेम्बर्स के हम लोग बहुत ही कृतज्ञ हैं। फ़रासीसी और डच लोगों की कोठियों

के अधिकारियों की ज़मानत पर आरमीनिया के ये व्यापारी छोड़ दिये गये थे। परन्तु हमारे दुर्दैव से हमारे लिए इनकी ज़मानत मंज़ूर न हुई।

"११ जुलाई को नव्वाब सिराजुद्दौला मुरशिदाबाद वापस आया। उसके साथ बन्दूसिंह नामक उसका एक कामदार भी आया। उसके आने पर हम लोग एक छकड़े में उसी के घर पहुँचाये गये। मैं ज़मीन पर पैर नहीं रख सकता था; इसलिए छकड़े पर लादा गया। वहाँ हमने सुना कि लौटते समय हुगली में नव्वाब ने हम लोगों को याद किया था और यह सुनकर वह नाराज़ हुआ था कि क्यों हम लोग इतना जल्द मुरशिदाबाद भेजे गये। उसने वहाँ पर वाट्स और कालेट आदि साहबों को रिहाई भी दे दी थी। इससे सूचित हुआ कि उसकी इच्छा हम लोगों को भी छोड़ देने की थी। यह समाचार हमारे लिए बहुत ही आनन्ददायक था।

"बन्दूसिंह के यहाँ भी हम लोग एक खुले बँगले में रक्खे गये। परन्तु वहाँ भीड़ से हम लोग बचे। इसलिए ताज़ी हवा से तबीयत को कुछ फ़रहत हुई। बन्दूसिंह का बर्ताव हमारे साथ अच्छा था। वह रोज़ यह कहकर धीरज देता था कि हम लोग शीघ्र ही छोड़ दिये जायँगे। १५ जुलाई को हम लोग हुक्म सुनने के लिए क़िले में पहुँचाये गये। एक घण्टे तक फाटक के बाहर धूप में हम सब खड़े रहे। वहाँ हमने देखा कि नव्वाब के कितने ही अमीर और अमला, जो

एक घण्टा पहले, बड़ी शान व शौकत से क़िले के भीतर गये थे, बड़ी बेइज़्ज़ती के साथ निकाले गये और अपने काम से बरख़ास्त भी कर दिये गये। हमारे लिए हुक्म हुआ कि आज हम लोग नव्वाब के सामने पेश न किये जायँगे। अतएव हमको फिर उसी पहले अस्तबल में आना पड़ा; और एक रात फिर वहाँ बितानी पड़ी। यह अस्तबल क़िले के पास था। वहाँ हम इसलिए रक्खे गये कि ज़रूरत पड़ने पर शीघ्र ही हम नव्वाब के सामने हाज़िर किये जायँ।

"१६ जुलाई को सवेरे एक बुढ़िया हमारी गारद के पास आई और कोई आध घण्टा बातचीत करती रही। यह बुढ़िया नव्वाब अलीवर्दी ख़ाँ की बेगम, अर्थात् सिराजुद्दौला की दादी, की लौंडी थी। जब वह चली गई तब हमने गारद के सिपाहियों से उसके आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा कि कल रात को एक दावत थी। उसमें बेगम ने हम लोगों की बहुत सिफ़ारिश की और नव्वाब सिराजुद्दौला से कहा कि वह हमको छोड़ दे। नव्वाब ने भी छोड़ देने का वादा कर लिया है। कहने की ज़रूरत नहीं, यह सुनकर हम लोगों के आनन्द की सीमा न रही। परन्तु यह आनन्द थोड़ी ही देर के लिए था। क्योंकि दोपहर को इस सुखाशा पर पाला पड़ गया। हमने सुना कि नव्वाब के दस्तख़तों के लिए एक हुक्मनामा तैयार किया गया है, जिसके मुताबिक़ बेड़ियों से लदे हुए हम लोग अलीनगर के गवर्नर, राजा मानिकचन्द,

के पास भेज दिये जावेंगे। कलकत्ते को छीनकर सिराजुद्दौला ने उसका नाम अलीनगर रक्खा था।

"यह खबर नहीं थी, हमारे ऊपर वज्रपात था। मानिकचन्द को हम लोग ख़ूब जानते थे। उसके बराबर निर्दयी, मक्कार और लुटेरा शायद ही कोई दूसरा हो। उसके हाथ से जीते बचना हम लोगों ने असम्भव समझा। इसलिए जीवन से हम लोग निराश हो गये। आशा ही सब दुःखों का मूल है। निराश होने पर दुःख अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता। हम लोग इस निराशा के कारण बेफ़िक्र से हो गये और दोपहर को खाना खाकर सो गये। उस दिन की सी नींद, मैं सच कहता हूँ, मुझे पहले कभी नहीं आई थी।

"पाँच बजे गारद ने हमको जगाया और कहा कि थोड़ी देर में नव्वाब मोती-झील नामक अपने महल को जायगा और अस्तबल के सामने से होकर निकलेगा। तैयार होकर हमने गारद से कहा कि सामने का रास्ता वह साफ़ रक्खे जिसमें हम लोग नव्वाब को देख सकें। नव्वाब यथासमय आया। हम लोगों ने झुककर सलाम किया। जब वह बिलकुल हमारे सामने आ गया तब उसने अपनी पालकी खड़ी कर दी और हमको अपने पास बुलाया। हम लोग फ़ौरन आगे बढ़े और नज़दीक जाकर मैंने संक्षिप्त वाक्यों में अपनी दुर्दशा का वर्णन किया और रिहाई के लिए प्रार्थना की।

हमारी उस हृदयविदारी और करुणाजनक हालत पर, हैवानों का सा कलेजा रखनेवाले उस नव्वाब को भी दया आई। वह कुछ बोला तो नहीं, परन्तु यह बात उसके चेहरे पर झलक आई। अपने दो अफ़सरों को उसने हुक्म दिया कि हमारी बेड़ियाँ काट दी जायँ; कोई हमारा अपमान न करने पावे; और जहाँ हम चाहें वहाँ पहुँचा दिये जायँ। यह हुक्म देकर वह चलता हुआ। ज्योंही हमारी बेड़ियाँ काटी गईं, हम लोग नाव पर सवार होकर क़ासिमबाज़ार पहुँचे। वहाँ डच लोगों की कोठी में हमारी बड़ी ख़ातिरदारी हुई। उन लोगों ने हमको बहुत अच्छी तरह रक्खा। कोई तकलीफ़ नहीं होने पाई।

"दोपहर को जो यह ख़बर उड़ी थी कि हम लोग कलकत्ते भेजे जायँगे उसका कारण था। लोगों ने नव्वाब को सुझाया था कि मेरे पास बहुत रुपया है। इससे जो मैं मानिकचन्द के पास भेज दिया जाऊँ तो वह, किसी न किसी ढङ्ग से, यह रुपया ज़रूर मुझसे ऐंठ लेगा। मगर नव्वाब ने इस सलाह को पसन्द न किया। उसने कहा कि मुझे काफ़ी तकलीफ़ मिल चुकी; यदि मेरे पास कुछ रुपया अभी बाक़ी है तो वह मैं अपने पास ख़ुशी से रक्खे रहूँ। इस मेहरबानी का कारण चाहे अलीवरदी ख़ाँ की बेगम हो, चाहे नव्वाब। परन्तु मैं समझता हूँ कि हमारी रिहाई उन दोनों ही की कृपा का फल था।

"मेरे दोस्त, इस प्रकार, अन्त को मैंने रिहाई पाई। जब से मैंने उस नरनाशी ब्लैक-होल में पैर रक्खा तब से इस समय तक मैंने तुमको अपनी मर्मभेदक कहानी सुनाकर ज़रूर तुम्हारे हृदय को चोट पहुँचाई होगी। अतएव मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ और अधिक न लिखकर क़लम को अब यहाँ नीचे रखता हूँ।"

[फ़रवरी १६०५

१०—भारतवर्ष का नौका-नयन

इस समय जहाज़ पर समुद्र पार करना एक प्रकार से मना है। जहाज़ पर सवार होकर दूर देशों को जाने से जाति चली जाती है—धर्म जाता रहता है; काशी के पण्डितों की बन आती है; उन्हें तार द्वारा व्यवस्थायें भेजनी पड़ती हैं; सभा-समाजों की धूम मच जाती है; एक पक्षवाले कहते हैं, यह विलायत हो आया, इससे पतित हो गया; दूसरे पक्षवाले कहते हैं, अजी राम का नाम लो, विलायत जाना भी क्या कोई पातक है? खैर, यह तो आजकल की बात हुई।

अब प्रश्न यह है कि जिन भारतवासियों ने लङ्का और जावा आदि टापुओं में जाकर बौद्ध-मत का प्रचार किया; जो पुराने ज़माने में अलेगज़ेंड्रिया और फ़ारिस आदि से व्यापार करते थे, जो म्लेच्छ माने गये लोगों के देश ग्रीस और रोम आदि में बेखटके जाते थे उनके क्या पङ्ख थे जो सुबह वहाँ उड़ जाते थे और शाम को फिर अपने घर आ जाते थे? अथवा क्या उन्हें हनूमान्‌जी की ऐसी सौ योजन की छलाँगें भरनी आती थीं कि दो-चार छलाँगों में लङ्का और मिस्र पहुँच जाते थे और रात को फिर मज़े में अपने घर कूद आते थे? क्या कोई व्यवस्थादानी पण्डित कृपा करके बता सकते हैं कि ऋग्वेद के "शतारित्रां नावम्" का क्या मतलब है? और

जतु-गृह-दाह की कथा से सम्बन्ध रखनेवाली महाभारत की मनोमारुतगामिनी यन्त्रयुक्ता नावों का ठीक-ठीक क्या अर्थ है? कालिदास तक ने रघुवंश में लिखा है—

"वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्" ये नौसाधन-वाले बङ्गाली अपनी नावें नदी-नालों ही में चलाते थे या कुछ दूर समुद्र में भी जाने का साहस करते थे?

अच्छा ये सब पुरानी बातें हुईं। नई बातों का भी बहुत कुछ पता चलता है। बङ्गाल के मुसलमान अधिकारियों के जहाज़ों की संख्या आदि का उल्लेख पुरानी पुस्तकों में मिलता है। जिसे इस विषय में और अधिक जानना हो वह "रियाज़ुस्सलातीन" नाम का ऐतिहासिक ग्रन्थ देखे। उससे मालूम हो जायगा कि मुग़ल बादशाह बङ्गाले की खाड़ी में जहाज़ों के बड़े-बड़े बेड़े रखते थे और ज़रूरत पड़ने पर विदेशियों से घमासान के जल-युद्ध करते थे। उनकी जलयुद्ध-सामग्री बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। इस कारण मग और पोर्चुगीज़ आदि विदेशी लोग उनसे बेतरह डरते थे। बाबू यदुनाथ सरकार ने "दि इंडिया आव औरङ्गज़ेब" (The India of Aurangzeb) नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने बङ्गाल के महाराजा प्रतापादित्य के जहाज़ी बेड़ों का, बन्दरगाहों का और सेना आदि का वर्णन किया है। इससे स्पष्ट है कि बहुत नहीं चार ही पाँच सौ वर्ष पहले भारतवर्ष में ख़ूब जहाज़ बनते थे, और आवश्यकता होने पर, सामुद्रिक लड़ाइयाँ भी

होती थीं। याद रहे, ये जहाज़ और देशों से बनवाकर नहीं मँगाये जाते थे; सब यहीं तैयार होते थे। जहाज़ बनाने के यहाँ बड़े-बड़े "डाक्स" (docks) थे। पर ये सब बातें अब स्वप्न हो गई हैं। जो लोग भारतवर्षीय जहाज़ों पर एडमिरल, यंजिनियर और कप्तान का काम करते थे उन्हीं को अब अन्य देशवाले अपने जहाज़ों पर ख़लासी तक नहीं रखते।

यह तो पूर्व में बङ्गाले की बात हुई। दक्षिण में भी, शिवाजी के समय में, जहाज़ बनाने और चलाने का पता लगता है। शिवाजी के जल-सेनापतियों ने तो बहुत दफ़े विदेशियों को जल-युद्ध में परास्त किया था। कुलाबा, रत्नागिरी और विजयदुर्ग में महाराष्ट्रों के बड़े-बड़े कारख़ाने जहाज़ बनाने के थे। शिवाजी के दो एडमिरल (जल-सेनापति) बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। एक का नाम था आनन्दराव, दूसरे का आंग्रे। चालीस-चालीस पचास-पचास जहाज़ों का बेड़ा इनमें से एक-एक के अधीन था। प्रत्येक बड़े जहाज़ में दस हज़ार मन तक माल लादा जा सकता था। लड़ाकू जहाज़ों में तीन-तीन चार-चार सौ सैनिक रहते थे। तोपें भी उनमें रहती थीं। एक-एक सेनापति के अधीन एक दो नहीं, सैकड़ों तोपें रहती थीं। इन बातों को कपोल-कल्पना न समझिए। मराठों और पोर्चुगीज़ों के पुराने काग़ज़-पत्रों में इस विषय का सविस्तर और सप्रमाण वर्णन मिलता है।

ये तो कुछ पुरानी बातें हुईं। जहाज़ चलाने और बनाने की विद्या तो इस देशवालों को अभी सौ वर्ष पहले तक मालूम थी। और ऐसी अच्छी मालूम थी कि और देशवाले यहाँ के जहाज़ों को देखकर दाँतों-तले उँगली दबाते थे।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ तक ढाके और कलकत्ते में अच्छे से अच्छे जहाज़ बनते थे। वहाँ जहाज़ बनाने के बड़े-बड़े कारख़ाने थे। कलकत्ते के बन्दरगाह में सैकड़ों जहाज़ दूसरी- सरी विलायतों को माल ले जाने के लिए हमेशा तैयार रहते थे। यहाँ के जहाज़ों की मज़बूती और जहाज़ चलानेवालों की कुशलता देखकर योरपवाले चकित होते थे—उनके जी में डर समा गया था कि यदि उन लोगों ने अपने जहाज़ों में तरक़्क़ी न की तो भारत के जहाज़ों के सामने उन्हें कोई कौड़ी को भी न पूछेगा। १८०१ ईसवी में लार्ड वेलज़्ली ने विलायत को भारतीय जहाज़ों की महिमा इस प्रकार लिख भेजी थी—

"The port of Calcutta contains about 10,000 tons of shipping, built in India, of description calculated for the conveyance of cargos to England.

From the quality of private tonnage now at command in the port of Calcutta and from the state of perfection which the art of ship build-

ing has already attained in Bengal, it is certain that this port will always be able to furnish tonnage to whatever extent may be required for conveying to the port of London the trade of the British merchants of Bengal."

अर्थात् कलकत्ते के बन्दरगाह में कोई २७ हज़ार मन माल लादकर इँगलेंड पहुँचाने के लिए काफ़ी जहाज़ हैं। ये सब जहाज़ हिन्दुस्तान ही के बने हुए हैं। बङ्गाल में जहाज़ बनाने की कला उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गई है और कलकत्ते के बन्दरगाह में हमेशा इतने जहाज़ तैयार रहते हैं कि अँगरेज़ सौदागर चाहे जितना माल लन्दन भेजें सब यहाँ के बने हुए जहाज़ आसानी से ले जा सकते हैं।

तूतीकोरिन में जहाज़ चलानेवाली स्वदेशी कम्पनी का नाम सुनकर कोई-कोई आश्चर्य करने लगते हैं कि—हाँ, हम लोग भी जहाज़ चलाने लगे! उन्हें शायद नहीं मालूम कि बम्बई से वेरावल और द्वारका आदि तथा कलकत्ते से गङ्गासागर, रंगून, चटगाँव, नरायनगञ्ज आदि तक अब भी कितने ही ऐसे जहाज़ चलते हैं जिनके स्वामी हिन्दुस्तानी हैं। पर ये जहाज़ उन्नीसवीं सदी के आरम्भवाले जहाज़ों के सामने कोई चीज़ ही नहीं समझे जा सकते। उनकी गिनती दस-पाँच नहीं हज़ारों थी। वे ऐसे अच्छे थे कि फ़्रांस, पुर्तगाल और इँगलेंड के जहाज़ बनानेवालों को भारतीय जहाज़

देखकर शरम से सिर नीचा करना पड़ता था। वे जहाज़ सौ दो सौ मील का सफ़र न करते थे। किन्तु तीन-तीन हज़ार मील की जल-यात्रा आसानी से तै करते थे।

यह कलकत्ते के बने हुए जहाज़ों की बात हुई। अब बम्बई के बने हुए जहाज़ों का कुछ हाल सुनिए। लफ़्टिनेंट कर्नल वाकर की लिखी हुई एक पुस्तक है। वह १८११ ईसवी में लिखी गई थी। उसका नाम है—"*Consideration on* the Affairs of India." उसमें लिखा है—

"*Every ship in the navy of Great Britain is* renewed every 12 years. It is well-known that *teak-wood-built ships last 50 years and upwards.* Many ships, Bombay-built, after running 14 to 15 years, have been brought into the navy and considered as strong as ever. The *Sir Edward Hughes* performed, I believe, 8 voyages before she was purchased by the navy. No Europe-built ship is capable of going more than 6 voyages with safety."

अर्थात् ग्रेट ब्रिटन के बने हुए जहाज़ १२ वर्ष से अधिक नहीं चलते। पर भारतवर्ष के सागौन के बने हुए जहाज़ ५० वर्ष से भी अधिक चलते हैं! बम्बई के बने हुए कितने ही जहाज़ १४, १५ वर्ष तक चल चुकने के बाद विलायत के

जल-सेना-विभाग द्वारा मोल ले लिये जाते हैं और मालूम होते हैं कि अभी कल के बने हुए हैं। योरप का बना हुआ एक भी जहाज़ ऐसा नहीं जो विलायत और कलकत्ते के बीच छः दफ़े से अधिक आ-जा सके। पर हिन्दुस्तान का बना हुआ एक जहाज़, जो आठ दफ़े आया-गया था, नये की तरह हमारे जल-सेना-विभाग द्वारा मोल ले लिया गया था!

कुछ ठिकाना है यहाँ के बने हुए जहाज़ों की मज़बूती का! वाकर साहब ने यह भी लिखा है कि जो जहाज़ विलायत में १००० रुपये में बनता था वही जहाज़ हिन्दुस्तान में ७५० रुपये ही में बन जाता था। तिस पर भी वह विलायती जहाज़ १२ वर्ष से अधिक नहीं चलता था; पर हिन्दुस्तानी जहाज़ ५० वर्ष बराबर काम देता था।

जब हिन्दुस्तानी जहाज़ों में लदा हुआ हिन्दुस्तानी माल विलायत पहुँचने लगा तब विलायत के जहाज़ बनानेवाले डर गये कि यदि इन जहाज़ों का आवागमन ऐसा ही बना रहा और इनका बनना हिन्दुस्तान में इसी तरह जारी रहा तो हमारे मुँह की रोटी ज़रूर छिन जायगी। उस समय यहाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी व्यापार करती थी। उसी ने कलकत्ते और बम्बई में जहाज़ बनाने के कारख़ाने खोले थे। विलायत जानेवाले ये जहाज़ उसी कम्पनी के थे। इससे विलायतवालों ने कम्पनी पर ज़ोर डालना शुरू किया कि तुम्हें यदि जहाज़ बनवाने हैं तो यहाँ विलायत में बनवाओ। इससे तुम्हारा

काम होगा और अपने देशवालों का भी पेट पलेगा। हाँ, रही मज़बूती की बात सो जिस ढँग से तुम्हारे जहाज़ हिन्दुस्तान में तैयार होते हैं उसी ढँग से यहाँ तैयार कराओ। ख़र्च यदि कुछ अधिक भी यहाँ पड़े तो उसकी तरफ़ तुम्हें न देखना चाहिए। क्योंकि स्वदेशभक्ति भी कोई चीज़ है। उसके लिए यदि कुछ अधिक भी ख़र्च हो जाय तो करना चाहिए।

उस समय कलकत्ते में व्यापारी जहाज़ बनाने के दो-तीन कारख़ाने थे। उनमें पाँच-पाँच छः-छः हज़ार मन माल लादने योग्य जहाज़ बनते थे। उनका बनाना धीरे-धीरे बन्द किया जाने लगा। पहले विलायत में "ओक" नाम की लकड़ी से जहाज़ बनाये जाते थे। अब ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान से सागौन की लकड़ी, जिससे यहाँ जहाज़ बनते थे, विलायत भेजना शुरू किया। यह लकड़ी 'ओक' की लकड़ी से बहुत अधिक मज़बूत होती है। वह अब तक ब्रह्मदेश और भारतवर्ष से जहाज़ बनाने के लिए विलायत जाती है। कम्पनी ने लकड़ी के सिवा जहाज़ बनाने की और सामग्री भी विलायत भेजी और वहाँ यहाँ की तरह मज़बूत जहाज़ बनवाने लगी। इस देश के ख़लासी भी धीरे-धीरे कम कर दिये गये। इस प्रकार जहाज़ बनाने की कला क्रम-क्रम से यहाँ लोप हो गई। एक समय था जब भारत के बने हुए कोई तीस-चालीस हज़ार जहाज़ भिन्न-भिन्न देशों को माल ले जाते थे और वहाँ से इस देश में माल लाते थे। पर

आजकल इन जहाज़ों की संख्या घटकर बहुत ही थोड़ी रह गई है। एक डाक्टर साहब ने इस देश पर कुछ "नोट्स" (Notes) लिखे हैं। ये नोट्स लिखे उन्हें कोई पचास-साठ वर्ष हुए। उनमें आप एक जगह लिखते हैं—

"The correct forms of ships, only elaborated within the past ten years, by the science of Europe, have been familiar to India for ten centuries."

अर्थात् जैसे अच्छे जहाज़ योरप में बने अभी दस ही वर्ष हुए वैसे जहाज़ आज दस सौ वर्ष से भारत में बनते आये हैं। सुना! यह न समझिए कि ईस्ट इंडिया कम्पनी ही ने इस देश में पहले पहल जहाज़ बनाने के कारख़ाने खोले थे। नहीं, जहाज़ यहाँ बहुत पहले से बनते थे और बहुत पहले ही से दूर-दूर देशों से व्यापार होता था। व्यापारिक जहाज़ों के सिवा शिवाजी और बङ्गाले के मुग़ल सूबेदारों के अधीन जङ्गी जहाज़ भी इस देश में थे।

जब से भारतवासियों का ध्यान देश की औद्योगिक दशा सुधारने की तरफ़ गया है तब से जहाज़ बनाने और जहाज़ी कम्पनियाँ खड़ी करके माल और मुसाफ़िर ले जाने का भी प्रबन्ध हो चला है। बङ्गाल स्टीम नैविगेशन कम्पनी के नाम से एक कम्पनी खुली है। इसका दफ़्तर रंगून में है। चटगाँव और रंगून, और कलकत्ता और रंगून के बीच इसके

जहाज़ चलते हैं। ईस्टर्न बङ्गाल स्टीम सरविस नाम की एक और कम्पनी खड़ी हुई है। इसे हुए तीन-चार वर्ष बीते। यह सिर्फ़ माल ले जाने का काम करती है। तीसरी कम्पनी तूतीकोरिनवाली है। इसका नाम है स्वदेशी स्टीम नैविगेशन कम्पनी। तूतीकोरिन और कोलम्बो के बीच इस कम्पनी के जहाज़ आते-जाते हैं। माल और मुसाफ़िर दोनों ले जाने का काम होता है। ये कम्पनियाँ बहुत अच्छी दशा में हैं। खूब तरक्क़ी कर रही हैं। इनके हिस्सेदारों को सात-सात आठ-आठ रुपया सैकड़ा सालाना सूद इनके हिस्सों पर मिलता है। नये-नये जहाज़ ये कम्पनियाँ बनवा रही हैं। आशा है, बहुत जल्द इनके काम में और भी अधिक उन्नति होगी। इनके सिवा बम्बई और कलकत्ते में कुछ और भी व्यवसायी हैं जिनके जहाज़ चलते हैं।

यद्यपि भारतवर्ष का नौका-नयन इस समय नाम लेने योग्य भी नहीं, तथापि १८०१ की मनुष्य-गणना के अनुसार उस समय ४२,८४० आदमी जहाज़ और नावें बनाकर अपनी जीविका चलाते थे। इनमें से अधिक लोग नावें ही बनानेवाले हैं, जहाज़ बनानेवाले कम।

इस समय भारतवर्ष में सब मिलाकर बड़े-बड़े १३०० जहाज़ ऐसे हैं जो समुद्र में दूर-दूर तक का सफ़र कर सकते हैं और माल तथा मुसाफ़िर ले जा सकते हैं। इनके सिवा कोई सात हज़ार छोटे-छोटे जहाज़ हैं जो समुद्र के किनारे

ही किनारे माल और मुसाफ़िर, एक जगह से दूसरी जगह, पहुँचाते हैं।

डान् सोसाइटी की मैगेज़ीन में प्रकाशित एक लेख के अनुसार १९०१ से १९०५ तक भारतवर्ष में सब मिलाकर ७५० बड़े-बड़े जहाज़ बने और कोई पाँच लाख रुपया इनके बनाने में ख़र्च हुआ। इससे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि ये जहाज़ बहुत बड़े न होंगे। ख़ैर, छोटे ही सही, बनना जारी तो है—दिन-दिन उन्नति तो होती जाती है। यही ग़नीमत है।

यदि हमारी गवर्नमेंट अपने जङ्गी जहाज़ बनाने का एक-आध कारख़ाना इस देश में भी खोलने की कृपा करे तो बड़ी अच्छी बात हो। ऐसा करने से सरकार का काम भी किफ़ायत के साथ हो और थोड़े से हिन्दुस्तानी मज़दूरों और कारीगरों का पेट भी चले।

[जुलाई १९०६

११—मौर्य्य-साम्राज्य के नाश का कारण

ईसा के कोई तीन सौ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त ने मगध में मौर्य-साम्राज्य की प्रतिष्ठा की थी। इस वंश के नरेशों की राजधानी पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) था। इसमें अशोक नामक एक बड़ा ही प्रतापी राजा हो गया है। उसने बहुत दूर तक अपने राज्य का विस्तार किया था। अनेकानेक लोकोपकारी कार्य भी उसने किये थे। परन्तु अशोक की मृत्यु के बाद थोड़े ही दिनों में मौर्य-साम्राज्य नष्ट हो गया। इतने बड़े साम्राज्य के इस तरह नष्ट हो जाने का ठीक कारण आज तक विद्वान् इतिहास-लेखक निश्चित नहीं कर सके। कुछ समय हुआ, महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री का लिखा हुआ, एशियाटिक-सोसाइटी की पत्रिका में, इस विषय पर एक लेख निकला था। उसमें उन्होंने मौर्य्य-साम्राज्य के लोप होने का बहुत ही युक्ति-सङ्गत कारण बतलाया है। लिखा है—

विन्सेंट स्मिथ साहब इसका कोई कारण निश्चित नहीं कर सके कि अशोक का इतना बड़ा साम्राज्य क्यों नष्ट हो गया। हिन्दुस्तान के प्राचीन इतिहास नामक अपने ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है कि सबसे पहले कलिङ्ग देश इस साम्राज्य से निकल गया। इसके बाद विदर्भ, आन्ध्र आदि प्रदेशों ने भी

उसका अनुकरण किया। ग्रीक लोगों ने पञ्जाब पर अधिकार कर लिया; इससे वह भी इस साम्राज्य से अलग हो गया। ये सब बातें ठीक हैं। तथापि यह विचार करने की बात है कि अशोक के सदृश प्रतापी सम्राट् का प्रतिष्ठित साम्राज्य, उसकी मृत्यु के चालीस ही पचास वर्ष बाद, टुकड़े-टुकड़े हो गया, इसका कारण क्या है।

इसका कारण ढूँढ़ने के लिए दूर जाने की ज़रूरत नहीं। यद्यपि अशोक किसी धर्म्म में बाधा नहीं डालता था—उसके राज्य में सभी धर्म्मों के अनुयायी निर्विघ्नता-पूर्वक अपना-अपना धर्म्मानुष्ठान करते थे, तथापि उसके कितने ही अनुशासनों से उसके हृदय का विपरीत भाव कुछ-कुछ प्रकट होता है। स्मिथ साहब लिखते हैं कि अशोक ने केवल पाटलिपुत्र में पशुबलि बन्द कर दी थी। किन्तु उसके राज्य के दूसरे कई स्थानों में भी पशुबलि-निषेध-सूचक अनुशासन पाये जाते हैं। इससे मालूम होता है कि उसके साम्राज्य में प्रायः सब कहीं पशुहत्या बन्द हो गई थी। उस समय के ब्राह्मण बलि-प्रदान करना बहुत पसन्द करते थे। यह अनुशासन उन लोगों के विरुद्ध प्रचारित हुआ था। एक शूद्र राजा की आज्ञा से उन लोगों की चिरप्रचलित प्रथा बन्द हो गई। इससे ब्राह्मण लोग अवश्य ही असन्तुष्ट थे। बहुत प्राचीन समय से भारतवर्ष में धर्म्मसम्बन्धी बातों में ब्राह्मणों का ही अनुशासन माना जाता था। यदि कोई मनुष्य समाज या धर्म्म-सम्बन्धी

नियमों का उल्लङ्घन करता तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता और ब्रह्म-भोज कराने पर उसका अपराध क्षमा किया जाता। अशोक ने एक धर्म्म-व्यवस्थापक सभा बनाकर ब्राह्मणों के इस चिरकाल-प्राप्त अधिकार पर हस्तक्षेप किया था। ब्राह्मण अपनी इस अधिकार-हानि को चुपचाप सहनेवाले न थे। अशोक ने अपने राज्य में दण्ड-समता और व्यवहार-समता का नियम चलाया था—अर्थात् उसके राज्य में दण्ड और विचार के सम्बन्ध में उच्च और नीच वर्ण का कुछ ख़याल नहीं किया जाता था। यह बात भी ब्राह्मणों को बहुत नागवार थी। अब तक जिन लोगों ने अशोक की ताम्रलिपियों की आलोचना की है उनमें किसी ने भी दण्ड-समता और व्यवहार-समता, इन दोनों शब्दों का अर्थ अच्छी तरह नहीं समझा। ब्राह्मण चाहे कैसा ही भारी अपराध क्यों न करे उसे दण्ड या फाँसी की सज़ा अशोक के पहले कभी नहीं दी जाती थी। ब्राह्मणों को देश से निकाल देना बहुत कठिन दण्ड समझा जाता था और उनकी शिखा कटवा देना तो घोरतम अपमान-सूचक दण्ड माना जाता था। मुक़द्दमों में भी ब्राह्मणों के लिए बहुत सुभीता था। उनको कभी गवाही न देनी पड़ती थी। यदि कोई ब्राह्मण अपने मन से गवाही देने आता तो न्यायाधीश केवल उसका बयान लिख लेता। न्यायाधीश को उससे जिरह करने का अधिकार न था। ऐसी अवस्था में अनार्य्य लोगों के साथ जेल जाने और वहाँ रहने

का ख़याल ही ब्राह्मणों को बहुत दुःखदायक था। जब तक अशोक का दृढ़ शासन रहा तब तक ब्राह्मण इन सब अवमाननाओं को चुपचाप सहते रहे। किन्तु मन ही मन वे अत्यन्त असन्तुष्ट थे। उसकी मृत्यु के बाद ब्राह्मणों ने दलबद्ध होकर अशोक के वंशधरों के साथ विरोध आरम्भ किया। परन्तु वे ख़ुद न लड़ सकते थे, और जिन क्षत्रिय नरेशों से उन्हें सहायता मिलने की आशा थी वे भी सब पहले ही नन्द-वंश के द्वारा परास्त हो चुके थे। परन्तु, अन्त में, उन्हें इस काम के योग्य एक आदमी मिल गया। वह मौर्य्य-वंश का सेनापति पुष्यमित्र था। पुष्यमित्र किस जाति का था, इसका कुछ पता नहीं। सम्भव है, जिन लड़ाकू लोगों को ग्रामवालों ने फ़ारिस से निकाल दिया था उन्हीं में से यह भी कोई हो। उसके नाम से भी मालूम होता है कि वह फ़ारिस ही का रहनेवाला होगा। वह ब्राह्मण-धर्म का पक्षपाती था और बौद्ध धर्म से बहुत घृणा करता था। ग्रीक लोग मौर्य्य-साम्राज्य में घुसते चले आते थे। पुष्यमित्र ने पहले इन आक्रमणकारियों का सामना किया। युद्ध में उन्हें परास्त करके वह विजयी सेना के साथ पाटलिपुत्र आया। अशोक के वंशधरों ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया। विजय के उपलक्ष्य में नगर के बाहर सेनानिवेश में उत्सव मनाया जाने लगा। जिस समय यह उत्सव हो रहा था उसी समय कहीं से एक तीर छूटा और अशोक के वंशधर राजा के ललाट में

घुस गया। उससे उसी समय उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार मौर्य्य-साम्राज्य का अन्त हो गया और पुष्यमित्र ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। मालविकाग्निमित्र-नाटक से पता लगता है कि पुष्यमित्र अपनी सेना के साथ पाटलिपुत्र ही में रहा और अपने पुत्र को उसने विदिशा (भिलसा) के सिंहासन पर बिठाया। इस विप्लव में ब्राह्मणों की साज़िश साफ़-साफ़ दिखाई देती है। इसका कारण, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह था कि अशोक ने अपने साम्राज्य में पशुबलि को बन्द कर दिया था। पुष्यमित्र ने सम्राट् होकर अशोक ही की राजधानी पाटलिपुत्र में अश्वमेध-यज्ञ किया। क्या इससे कथित कारण की पुष्टि नहीं होती? किसी-किसी बौद्ध-ग्रन्थ में लिखा है कि पुष्यमित्र बौद्धों का विरोधी था। यह बात मिथ्या नहीं मालूम होती। पुष्यमित्र के राजा होने पर थोड़े ही दिनों में ब्राह्मणों का माहात्म्य बढ़ गया। मौर्य्य-साम्राज्य के सिवा और भी दूर-दूर तक उनका प्रभाव फैला। ब्राह्मणों ने बौद्ध और जैन धर्म्म का प्रचार रोक दिया। देश की सारी विद्याओं को उन्होंने लिपिबद्ध किया और ब्राह्मण-धर्म्म को ऐसे साँचे में ढाला कि आज तक वह बना हुआ है। पुष्यमित्र के यज्ञ में पतञ्जलि ऋषि ने पुरोहित का काम किया था। पुष्यमित्र के आश्रय में रहकर ही पतञ्जलि ने महा-भाष्य की रचना की थी। कण्ववंशीय नरेशों ने मनुसंहिता का सङ्कलन कराया और उन्हीं ने रामायण और महाभारत

को आधुनिक रूप में परिणत किया। ब्राह्मण-राजवंश जिस समय राजसिंहासन पर न था उस समय भी ब्राह्मण लोग सुङ्गवंशीय नरेशों के गुरु थे। राज्य-सञ्चालन में उनका भी हाथ रहता था। राज्य-शासन-सम्बन्धी प्रभुता का लोप होने पर भी बहुत दिनों तक वे समाज के मुखिया थे और सारी विधि-व्यवस्था उन्हीं के द्वारा होती थी। मनुसंहिता से मालूम होता है कि अशोक ने ब्राह्मणों के जो अधिकार छीन लिये थे उनको ब्राह्मणों ने फिर से प्राप्त करके समाज में अपनी श्रेष्ठता पुनर्वार स्थापित कर दी। अशोक ने ब्राह्मणों की भूदेव-उपाधि को मिथ्या बतलाया था। परन्तु ब्राह्मणों ने अशोक के बाद पहले से भी अधिक सम्मान प्राप्त कर लिया।

अशोक ने जाति-पाँति का विचार न करके विचार-समता का नियम चलाया था। उसका जो परिणाम हुआ वह मृच्छ-कटिक नामक नाटक से मालूम होता है। जान पड़ता है कि इस नाटक का राजा पालक अशोक का अनुगामी था। उसके राज्य में ब्राह्मणों की बड़ी दुर्दशा थी। चारुदत्त नामक ब्राह्मण और उसके अनुचर बहुत ही दरिद्र हो गये थे। शार्व्वि-लिक नामक एक ब्राह्मण को जीविका के लिए चोरी तक करनी पड़ी थी। न्यायाधीश ने जिस समय चारुदत्त को स्त्री-हत्या का अपराधी ठहराया उस समय वह चारुदत्त को ब्राह्मण समझ-कर उसे प्राणदण्ड देने के विषय में पसोपेश करने लगा। परन्तु राजा ने उसकी एक न सुनी। उसने चारुदत्त को

फाँसी पर चढ़ा देने ही की आज्ञा दी। उसकी आज्ञा का पालन भी नहीं किया गया था कि दङ्गा उठ खड़ा हुआ। राजा सिंहासन से उतार दिया गया। चारुदत्त ने प्रधान मन्त्री का पद प्राप्त किया और शार्व्वलिक भी उच्चपदाधिकारी बनाया गया। इससे यह प्रमाणित होता है कि अशोक ने ब्राह्मणों को जो अन्य वर्णवालों के बराबर करने की चेष्टा की थी उसी से उसका साम्राज्य अधिक दिनों तक न ठहर सका।

[दिसम्बर १६१५

१२—चन्देल-राजवंश

मुसलमानों का अधिकार जमने के पहले उत्तरी भारत की राजलक्ष्मी जिन छोटे-छोटे राजवंशों के हाथ में थी उनमें चन्देल या चँदेला-वंश मुख्य था। इस वंश के राजा परमाल से इन प्रान्तों के अपढ़ लोग भी परिचित हैं, क्योंकि उसका ज़िक्र आल्हा में है। इस राजवंश के इतिहास के विषय में पुरातत्त्ववेत्ताओं ने जनश्रुति, शिलालेख, ताम्रपत्र और सिक्कों की सहायता से अब तक जो कुछ पता लगाया है उसी का सारांश यहाँ पर लिखा जाता है।

जिस भूखण्ड में चन्देलों का राज्य था उसे आजकल बुँदेलखण्ड कहते हैं। परन्तु चन्देलों के समय में इसका नाम जिझौति या जेजाभुक्ति था। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युयेनसङ्ग के समय में इस राज्य की राजधानी एरन में थी। यह स्थान सागर से पैंतालीस मील पश्चिम की ओर, बीना नदी के किनारे, है। परन्तु दसवीं शताब्दी के आदि में इसकी राजधानी खजुराहो हो गई थी। खजुराहो आजकल छत्रपुर रियासत के अन्तर्गत है और महोबा से कोई चौंतीस मील की दूरी पर दक्षिण की ओर है। यहाँ के मन्दिर बड़े ही सुन्दर और भव्य हैं। इस रद्दी हालत में भी जो लोग उन्हें देखते हैं वे उनके बनानेवालों के शिल्पनैपुण्य की प्रशंसा किये विना नहीं रह सकते।

चन्देले क्षत्रियों, अर्थात् राजपूतों, के अन्तर्गत समझे जाते हैं। परन्तु इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि इस वंश की उत्पत्ति कहाँ से हुई। चन्देलों का कथन है कि चन्द्रदेव और एक ब्राह्मण-कन्या के संयोग से उनकी उत्पत्ति हुई है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं कि विदेशी आक्रमणकारी हून जाति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता विन्सेंट स्मिथ साहब का अनुमान है कि चन्देलों की उत्पत्ति गोंड तथा इसी प्रकार की अन्य कई जातियों के मेल से हुई है। वे छत्रपुर राज्य के अन्तर्गत मनियागढ़ नामक स्थान के मूल-निवासी थे। इस बात को खजुराहो के वर्तमान चन्देल जमींदार भी मानते हैं। महाकवि चन्द का कथन है कि मनियागढ़ में गोंडों का राज्य था। इसके सिवा सोलहवीं शताब्दी में चन्देल-राजकुमारी दुर्गावती ने गढ़मण्डल के गोंड-सरदार से विवाह भी किया था। इससे मालूम होता है कि स्मिथ साहब का अनुमान असत्य नहीं।

यह बात अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है कि सातवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में महाराज हर्षवर्द्धन समस्त उत्तरी भारत के सार्वभौम सम्राट् थे। जेजाभुक्ति या वर्तमान बुँदेलखण्ड भी हर्ष के साम्राज्य के अन्तर्गत था। हुयेनसङ्ग कहता है कि उस समय (६४२ ईसवी में) जेजाभुक्ति में एक ब्राह्मण राजा राज्य करता था। यह राजा महाराज हर्ष के अधीन था। सन् ६४८ ईसवी में महाराज हर्ष की मृत्यु हो जाने

से सारा साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो गया और छोटे-छोटे राजे स्वतन्त्र हो गये। इसके बाद सातवीं और आठवीं शताब्दी के इतिहास का पता नहीं लगता। मालूम नहीं, इस बीच में ब्राह्मण-राज्य की क्या दशा हुई।

ऐसा सुअवसर पाकर मनियागढ़ के वीर चन्देलों ने अपना राज्य बढ़ाना प्रारम्भ किया। पहले उन्होंने महोबा अपने कब्ज़े में किया। इसके बाद धीरे-धीरे वे सारे जेजाभुक्ति-राज्य के अधिपति बन गये। इस वंश में कौन-कौन से नरेश हुए और वे किस-किस समय सिंहासनासीन हुए, इसकी तालिका नीचे दी जाती है—

संख्या	नरेशों के नाम	सिंहासनारोहण का साल ईसवी
१	नन्नुक	८३१
२	वाक्पति	८४५
३	जयशक्ति (जेजाक)	८६०
४	विजयशक्ति (विज्जाक)	८८०
५	राहिल	९००
६	हर्ष	९१५
७	यशोवर्म्मन् (लक्षवर्म्मन्)	९३०
८	धङ्ग	९५०
९	गण्ड	१०००
१०	विद्याधर	१०२५

संख्या	नरेशों के नाम	सिंहासनारोहण का साल ईसवी
११	विजयपाल	१०४०
१२	देववर्म्मन्	१०५५
१३	कीर्त्तिवर्म्मन्	१०६०
१४	लक्ष्मणवर्म्मन्	११००
१५	जयवर्म्मन्	१११०
१६	पृथ्वीवर्म्मन्	११२०
१७	मदनवर्म्मन्	११२८
१८	परमार्दि	११६५
१९	त्रैलोक्यवर्म्मन्	१२०३
२०	वीरवर्म्मन्	१२४५
२१	भोजवर्म्मन्	१२८७

पुरातत्त्ववेत्ताओं का अनुमान है कि दसवीं शताब्दी के आदि तक चन्देल-राज्य कन्नौज के महाराजों के अधीन करद राज्य था। अर्थात् शुरू के पाँच चन्देल राजे (८३१ से ९१५ ईसवी तक) स्वतन्त्र नरेश न थे। उनके समय का कोई विशेष वृत्तान्त भी नहीं मिलता। जान पड़ता है कि वे लोग अपना पैतृक राज्य भोग करने और साधारण रूप से राज-काज चलाने ही से सन्तुष्ट थे।

चन्देल-वंश के छठे नरेश राजा हर्षदेव (९१५—९३०) ने कन्नौज की अधीनता की बेड़ी तोड़ दी। केवल यही नहीं,

उसने कन्नौज पर आक्रमण करके वहाँ के तत्कालीन नरेश महाराज क्षितिपाल को गद्दी से उतार भी दिया और जब उसने चन्देलराज की अधीनता स्वीकार कर ली तब उसे फिर दोबारा सिंहासन पर बिठा दिया। यह घटना ९१७ ईसवी की है। कहते हैं कि क़रीब-क़रीब इसी समय राष्ट्रकूट-नरेश तृतीय इन्द्र ने भी कन्नौज पर आक्रमण करके क्षितिपाल (या महिपाल) को सिंहासनच्युत किया। सम्भव है, इन्द्र और हर्षदेव दोनों राजों ने मिलकर कन्नौज को विजय किया हो; पर इसमें सन्देह नहीं कि कन्नौज-राज को दोबारा गद्दी पर बिठाने का यश हर्षदेव ही को प्राप्त है। मालूम होता है कि राष्ट्रकूट और चन्देल-राज में से कोई भी ऐसा शक्तिशाली न था जो कन्नौज में स्थायी आधिपत्य जमा सकता। इसी से उन लोगों ने अपने को केवल विजयी वीर कहलाकर सन्तोष किया।

हर्षदेव के बाद उसका पुत्र यशोवर्म्मन्, ९३० ईसवी में, गद्दी पर बैठा। वह चन्देल-वंश का सातवाँ राजा था। उसने कालिञ्जर का क़िला जीतकर तथा उसे अपने राज्य में मिलाकर अपने वंश की कीर्त्ति और राज्य की शक्ति ख़ूब ही बढ़ाई। उसके समय में कन्नौज का रहा-सहा प्रभुत्व और भी कम हो गया। खजुराहो में उसने विष्णु का एक बड़ा ही आलीशान मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में जिस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की गई थी वह उसने कन्नौज-राज देवपाल से प्राप्त की थी। इस घटना से मालूम होता है कि कन्नौज के राजा

चन्देलराज के कृपापात्र बनने में अपना सौभाग्य समझते थे। वास्तव में यशोवर्म्मन् बड़ा ही प्रतापी राजा था। उसने गौड़, खसिया, कोशल, काश्मीर, मिथिला, मालवा, चेदि, गुर्जर आदि कितने ही शक्तिशाली राज्यों पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की थी। उसकी विजय-पताका हिमालय से लेकर नर्मदा तक, सारे उत्तरी भारत में, फहराती थी। पूरे बीस वर्ष तक अखण्ड राज्य करने के बाद ९५० ईसवी में उसकी मृत्यु हुई।

यशोवर्म्मन् के बाद जेजाभुक्ति-राज्य का सूत्र धङ्ग के हाथ में आया। उस समय पराक्रमी चन्देल-राजों के यशः-सौरभ से सम्पूर्ण भरतखण्ड महक रहा था। चन्देलों का राज्य अब केवल जेजाभुक्ति ही की सीमा के भीतर बद्ध न था; किन्तु उसका विस्तार उत्तर में यमुना से लेकर दक्षिण में नर्म्मदा नदी तक और पूर्व में काशी से लेकर पश्चिम में बेतवा नदी तक फैला हुआ था। उत्तर-पूर्व में गोपाद्रि या ग्वालियर धङ्ग का करद राज्य था। मतलब यह कि चन्देल-राज्य की गिनती उस समय बड़े-बड़े शक्तिशाली राज्यों में हो गई थी।

९८९ ईसवी के लगभग भटिण्डा-नरेश जयपाल ने चन्देल-राज धङ्ग से प्रार्थना की कि वे, अन्य राजों के साथ, यवनराज सुबुक्तगीन के मुक़ाबले में उसे सहायता दें। धङ्ग ने इसे स्वीकार कर लिया। देहली, अजमेर, कालिञ्जर, क़न्नौज और भटिण्डा के राजों की फ़ौजें भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर जमा हुईं। ग़ज़नी के सुलतान सुबुक्तगीन और हिन्दू-

नरेशों की सेनाओं में कई दिन तक विकट युद्ध होता रहा। पर अन्त में नाना कारणों से विजयश्री सुबुक्तगीन ही को प्राप्त हुई। हिन्दुओं को हार खानी पड़ी। उनकी सेना तितर-बितर हो गई।

अपने पिता की तरह धङ्ग ने भी खजुराहो में कितने ही सुन्दर, सुसज्जित और भव्य मन्दिर बनवाये। उनमें से कंडेरिया महादेव का मन्दिर सर्वोत्तम है। धङ्ग ने ९५० से लेकर कोई १००० ईसवी तक राज्य किया। कहते हैं कि इतने अधिक काल तक किसी चन्देल-राजा ने राज्य नहीं किया। एक शिलालेख से मालूम होता है कि उसने सौ वर्ष से अधिक आयु पाई। उसकी मृत्यु प्रयाग में, गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर, हुई।

राजा धङ्ग के बाद उसका पुत्र गण्ड विस्तृत चन्देल-राज्य का अधिकारी हुआ। इसी समय सुबुक्तगीन के उत्तराधिकारी सुलतान महमूद ने जयपाल के पुत्र आनन्दपाल पर आक्रमण किया। अपने पिता की तरह आनन्दपाल ने भी उज्जैन, ग्वालियर, देहली, अजमेर, कालिञ्जर और कन्नौज के राजों की सहायता माँगी। सब नरेशों की सेनायें युद्ध-स्थल में जमा हुईं। पहले तो हिन्दुओं ने वीरता दिखाई; पर आनन्द-पाल के हाथी के भागने से फ़ौज में गड़बड़ पड़ गई। मैदान मुसलमानों के हाथ रहा। आनन्दपाल की सहायता के लिए जो सेनायें एकत्र हुई थीं उनमें गण्ड की भेजी हुई सेना

भी थी। मालूम नहीं कि गण्ड स्वयं युद्ध में उपस्थित था या नहीं।

सन् १०१९ ईसवी में सुलतान महमूद ग़ज़नवी ने कन्नौज पर आक्रमण किया। पर कन्नौज-नरेश राज्यपाल के अधीनता स्वीकार कर लेने पर वह मथुरा चला गया और वहाँ लूट-पाट करके ग़ज़नी को लौट गया। यह देखकर कि राज्य-पाल ने अति शीघ्र अधीनता स्वीकार कर ली, चन्देल-राज गण्ड बहुत क्रुद्ध हुआ। इसलिए उसने अपने पुत्र विद्याधर को, अन्य कई सहायकों के साथ, कन्नौज पर आक्रमण करने के लिए भेजा। समवेत सेना ने कन्नौज घेर लिया और विदेशी आक्रमणकारी की अधीनता स्वीकार कर लेने के अपराध में राज्यपाल को प्राण-दण्ड दिया। सुलतान महमूद को ज्योंही इस घटना की ख़बर मिली त्योंही, कन्नौज-राज का बदला लेने के लिए, वह ग़ज़नी से रवाना हुआ। रास्ते में लूटपाट करता हुआ वह १०२० ईसवी में गण्ड के राज्य में जा पहुँचा। इधर गण्ड ने भी मुक़ाबले के लिए कोई डेढ़ लाख फ़ौज इकट्ठा कर रक्खी थी। इतनी बड़ी सेना को देखकर पहले तो महमूद सहम गया; पर जब दूसरे दिन सुना कि गण्ड अपने कुछ सेवकों के साथ रात को लापता हो गया तब उसके जी में जी आया। उसने राज्य लूट लेने की आज्ञा दे दी। फिर क्या था, वह समृद्धिशाली राज्य बात की बात में उजड़ गया। इस तरह महमूद विजय का

डङ्का बजाते हुए ग़ज़नी को लौट गया। पर यह समझ में नहीं आता कि जो गण्ड कन्नौज-राज को दण्ड देने के लिए इतना उत्सुक था और जिसने युद्ध की इतनी भारी तैयारी की थी वह महमूद का मुकाबला किये बिना ही एकाएक क्यों भाग गया। पूर्वोक्त वृत्तान्त मुसलमानों के लिखे हुए इतिहासों के आधार पर लिखा गया है। इसलिए नहीं कह सकते कि वह कहाँ तक सत्य है। कहते हैं कि १०२३ ईसवी में महमूद ने चन्देल-राज्य पर आक्रमण किया था। इस बार गण्ड ने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली और अनन्त धन तथा तीन सौ हाथी देकर उससे पीछा छुड़ाया।

गण्ड के बाद उसके उत्तराधिकारी विद्याधर, विजयपाल और देववर्म्मन् ने १०२५ से लेकर १०६० ईसवी तक राज्य किया। उनके समय में क्या-क्या घटनायें हुईं, इसका कुछ भी पता नहीं लगता। एक शिलालेख से केवल इतना ही मालूम होता है कि विद्याधर और कन्नौज के तत्कालीन नरेश त्रिलोचनपाल में कुछ दिनों तक युद्ध हुआ था।

देववर्म्मन् के कोई सन्तान न थी। इसलिए उसके बाद उसका भाई कीर्त्तिवर्म्मन् गद्दी पर बैठा। उसने १०६० से लेकर ११०० ईसवी तक राज्य किया। कीर्त्तिवर्म्मन् अपने वंश में बड़ा प्रसिद्ध नरेश हुआ। गद्दी पर बैठते ही चेदिराज कर्णदेव के साथ उसका युद्ध छिड़ गया। पहले ते। कर्णदेव ने कीर्त्तिवर्म्मन् को परास्त करके सिंहासनच्युत कर दिया और

मुक़ाबला किया, पर जेय जीतने की आशा न रही तब अधीनता स्वीकार कर लीं। कुतुबुद्दीन ने कालिञ्जर पर दख़ल जमा लिया और हज़ब्बरुद्दीन हसन श्रनील को कालिञ्जर का हाकिम बनाकर बदायूँ की ओर लौट आया। इसके कुछ दिनों बाद परमाल की मृत्यु हो गई।

सन् १२०३ ईसवी में महोबा और कालिञ्जर मुसलमानों के हाथ में चले गये। परमाल के मरने के साथ ही चन्देल-वंश के शक्तिशाली राज्य का इतिहास समाप्त सा हो गया। उसके बाद इस वंश में जो नरेश हुए वे केवल नाम मात्र के राजा थे।

[जूलाई १९०६

द्विवेदी-ग्रन्थावली

आख्यायिका-सप्तक

इस पुस्तक में सात आख्यायिकाएँ हैं। सब इतनी सुन्दर तथा मनोरञ्जक हैं कि पुस्तक बिना पूरी पढ़े छोड़ने को जी नहीं चाहता। प्रत्येक कहानी जीवन के किसी अंश का ख़ासा पाठ पढ़ाती है। ये आख्यायिकाएँ मनोरञ्जन के साथ-साथ जीवन को सुखमय बना देती हैं। मूल्य दस आने।

विदेशी विद्वान्

इस पुस्तक में वर्णित विदेशी विद्वानों के चरित्र पढ़ने लायक़ हैं। स्वजाति-सेवा, शिक्षा-प्रेम, व्यवसाय-नैपुण्य, नूतन धर्म-स्थापना आदि का इन जीवनियों में अच्छा दिग्दर्शन होता है। ऐसी पुस्तकों से न सिर्फ़ आदर्शों का ही पता लगता है बल्कि विदेशी ढङ्ग की भी बहुत सी बातें मालूम होती हैं। मूल्य केवल एक रुपया।

कोविद-कीर्तन

इसमें भारत के अर्वाचीन १२ महापुरुषों और विद्वानों के चरित्र, उनकी कृति तथा अन्य आवश्यकीय जीवन-सम्बन्धी ज्ञातव्य बातें रोचक भाषा में लिखी गई हैं। फिर द्विवेदीजी की लेखनी का चमत्कार किसे नहीं मालूम। पढ़ने से जीवन पर तो असर पड़ता ही है, साथ ही मनोरञ्जन भी होता है। भारतीय नवयुवकों के लिए ऐसी पुस्तकों के पढ़ने की आवश्यकता है। मूल्य केवल एक रुपया।

आध्यात्मिकी

इस पुस्तक में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, निरीश्वरवाद, जीवन क्या वस्तु है, पुनर्जन्म, ज्ञान, सृष्टि-विचार आदि विषयों पर मार्मिक विचार

जेजाभुक्ति को अपने राज्य में मिला लिया; पर अन्त में कीर्त्ति-वर्म्मन् ही की जीत हुई और कर्णदेव ऐसा परास्त हुआ कि फिर न सिर उठा सका। यह घटना १०६५ ईसवी की है। इसका ज़िक्र कृष्णमिश्र-रचित प्रबोध-चन्द्रोदय नाम के प्रसिद्ध नाटक की प्रस्तावना में भी है। कहते हैं कि जब कीर्त्तिवर्म्मन् कर्णदेव को परास्त करके लौटा तब यह नाटक उसके ब्राह्मण सेनापति गोपाल के आज्ञानुसार उसके दरबार में खेला गया था।

कीर्त्तिवर्म्मन् के उत्तराधिकारी लक्ष्मणवर्म्मन्, जयवर्म्मन् और पृथ्वीवर्म्मन् के राजत्वकाल की घटनाओं का भी कुछ पता नहीं लगता। इन लोगों ने ११०० से लेकर ११२८ ईसवी तक राज्य किया।

सन् ११२८ में मदनवर्म्मन् जेजाभुक्ति की राजगद्दी पर बैठा। उसने ११६५ ईसवी तक, अर्थात् पूरे सैंतीस वर्ष, राज्य किया। वह बड़ा वीर था। चन्द के काव्य और कई शिला-लेखों से मालूम होता है कि उसके समय में चन्देल-राज्य की सीमा बहुत दूर तक बढ़ गई थी। उसने गुजरात, चेदि, मालवा, काशी आदि कई राज्यों के नरेशों को सम्मुख युद्ध में परास्त करके अपने अधीन बना लिया था।

मदनवर्म्मन् का पौत्र परमार्दि उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह ११६५ ईसवी में गद्दी पर बैठा। साधारण लोग उसे परमाल कहते हैं। चन्द के काव्य और आल्हा में वह इसी नाम से विख्यात है।

परमाल महा कायर था। पर इसमें सन्देह नहीं कि उसके सेनापति आल्हा और ऊदल बड़े वीर थे। इलाहाबाद के ज़िले में, यमुना के दक्षिणी किनारे पर, चिल्ला नामक एक गाँव है। वहाँ आठवीं या नवीं शताब्दी का बना हुआ एक बहुत पुराना, किन्तु ख़ूब मज़बूत, मकान है। गाँववालों का कथन है कि बनाफर-वंशावतंस आल्हा और ऊदल इसी घर में रहते थे। मालूम नहीं, यह बात कहाँ तक सत्य है।

पृथ्वीराजरासो के महोबा-खण्ड में लिखा है कि संवत् १२३९ (सन् ११८३) में पृथ्वीराज और परमाल के बीच में बड़ा विकट युद्ध हुआ। यह युद्ध कई महीने तक होता रहा। अन्त में पहूज नदी के किनारे, सिरसागढ़ के मैदान में, परमाल की हार हुई। परमाल की सेना के भागने पर चौहान सेना ने पीछा किया। महोबा में फिर एक क्षुद्र युद्ध हुआ। पर चन्देलों के पैर उखड़ गये। मैदान चौहानों के हाथ रहा। कुछ दिनों तक पृथ्वीराज महोबा पर दख़ल जमाये पड़ा रहा। अन्त में परमाल के पितामह मदनवर्म्मन् के बसाये हुए मदनपुर (ज़िला झाँसी) में अपने विजय का वृत्तान्त चिरस्थायी रखने के लिए कुछ शिलालेख लिखवाकर वह देहली को चल दिया।

इसके बाद बीस वर्ष तक की किसी घटना का हाल नहीं मालूम होता। सन् १२०३ ईसवी में क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने चन्देल-राज्य पर आक्रमण किया। परमाल ने पहले तो

मुकाबला किया, पर जब जीतने की आशा न रही तब अधी-नता स्वीकार कर ली। कुतुबुद्दीन ने कालिञ्जर पर दखल जमा लिया और हुज़ब्बरुद्दीन हसन अनील को कालिञ्जर का हाकिम बनाकर बदायूँ की ओर लौट आया। इसके कुछ दिनों बाद परमाल की मृत्यु हो गई।

सन् १२०३ ईसवी में महोबा और कालिञ्जर मुसलमानों के हाथ में चले गये। परमाल के मरने के साथ ही चन्देल-वंश के शक्तिशाली राज्य का इतिहास समाप्त सा हो गया। उसके बाद इस वंश में जो नरेश हुए वे केवल नाम मात्र के राजा थे।

[जूलाई १९०९

द्विवेदी-ग्रन्थावली

आख्यायिका-सप्तक

इस पुस्तक में सात आख्यायिकाएँ हैं। सब इतनी सुन्दर तथा मनोरञ्जक हैं कि पुस्तक बिना पूरी पढ़े छोड़ने को जी नहीं चाहता। प्रत्येक कहानी जीवन के किसी अंश का खासा पाठ पढ़ाती है। ये आख्यायिकाएँ मनोरञ्जन के साथ-साथ जीवन को सुखमय बना देती हैं। मूल्य दस आने।

विदेशी विद्वान्

इस पुस्तक में वर्णित विदेशी विद्वानों के चरित्र पढ़ने लायक हैं। स्वजाति-सेवा, शिक्षा-प्रेम, व्यवसाय-नैपुण्य, नूतन धर्म-स्थापना आदि का इन जीवनियों में अच्छा दिग्दर्शन होता है। ऐसी पुस्तकों से न सिर्फ़ आदर्शों का ही पता लगता है बल्कि विदेशी ढङ्ग की भी बहुत सी बातें मालूम होती हैं। मूल्य केवल एक रुपया।

कोविद-कीर्तन

इसमें भारत के अर्वाचीन १२ महापुरुषों और विद्वानों के चरित्र, उनकी कृति तथा अन्य आवश्यकीय जीवन-सम्बन्धी ज्ञातव्य बातें रोचक भाषा में लिखी गई हैं। फिर द्विवेदीजी की लेखनी का चमत्कार किसे नहीं मालूम। पढ़ने से जीवन पर तो असर पड़ता ही है, साथ ही मनोरञ्जन भी होता है। भारतीय नवयुवकों के लिए ऐसी पुस्तकों के पढ़ने की आवश्यकता है। मूल्य केवल एक रुपया।

आध्यात्मिकी

इस पुस्तक में आत्मा, परमात्मा, ईश्वर, निरीश्वरवाद, जीवन क्या वस्तु है, पुनर्जन्म, ज्ञान, सृष्टि-विचार आदि विषयों पर मार्मिक विचार

किया गया है। पुस्तक के पढ़ने से भारतीय पुरुषाओं के अध्यात्म-सम्बन्धी विचारों की उत्तमता और दृढ़ता ज्ञात होती है और मालूम होता है कि भारतीय ज्ञान से संसार के प्राणियों को शान्ति प्राप्त होती थी। पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर। मूल्य एक रुपया।

आलोचनाञ्जलि

हिन्दी संसार में द्विवेदीजी के लिखे हुए समालोचनात्मक लेखों की ख़ासी क़द्र है। आपके लिखे हुए इस श्रेणी के लेखों को पढ़ने से बड़ी पुस्तकों और प्रसिद्ध कवियों का परिचय बड़ी सुगमता से हो जाता है। इस पुस्तक में इस ढँग के १२ लेख हैं जिनमें से किसी में शकुन्तला पर प्रकाश डाला गया है, किसी में ज्योतिष-वेदाङ्ग, गीता-भाष्य, रामायण और श्रीमद्भागवत आदि का आलोचनात्मक परिचय है। सभी प्रबन्ध एक से एक उत्तम हैं। पृष्ठसंख्या पौने दो सौ से ऊपर। सुन्दर जिल्द। मूल्य सिर्फ़ एक रुपया।

प्राचीन चिह्न

किसी जाति अथवा देश की प्राचीन सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करने के जितने साधन हैं उनमें पुरानी इमारतों, प्राचीन स्थानों और वस्तुओं का बहुत अधिक महत्त्व है। इस पुस्तक में, इसी ढँग के, द्विवेदीजी के लिखे हुए १४ निबन्ध हैं जिनसे पाठकों को बहुत सी नई बातें मालूम होंगी और उनका ज्ञान बढ़ेगा। पुस्तक का परिचय पुस्तक के पढ़ने से ही मिलेगा। पृष्ठसंख्या सवा सौ से ऊपर। मूल्य सिर्फ़ बारह आने।